UGC Approved Research Journal No. 47816
पंजीयन संख्या RNI No.: MPHIN/2002/9510

ISSN : 2456-8856
डाक पंजीकृत क्रमांक 204/2018-2020 उज्जैन (म.प्र.)

Peer Reviewed Bilingual Monthly International Research Journal

आश्वस्त

वर्ष 23, अंक 206

दिसम्बर 2020

शत-शत नमन

संपादक - डॉ. तारा परमार

भारती दलित साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश, उज्जैन की अन्तर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका

वर्ष : 23 अंक 206
दिसम्बर 2020

आश्वस्त

(सन् 1983 से निरंतर प्रकाशित)

RNI No.: MPHIN/2002/9510
ISSN : 2456-8856

भारती दलित साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश, उज्जैन (पंजीयन क्रमांक 2327 दिनांक 13/05/1999) की मासिक पत्रिका

संस्थापक सम्पादक
डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी

संरक्षक
सेवाराम खाण्डेगर
11/3, अलखनन्दा नगर, बिड़ला हॉस्पिटल के पीछे,
उज्जैन मो.: 98269-37400

परामर्श
आयु. सूरज डामोर IAS
पूर्व सचिव-लोक स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण वि.
म.प्र.शासन, भोपाल मो. 094253-16830

सम्पादक
डॉ. तारा परमार
9-बी, इन्द्रपुरी, सेठी नगर, उज्जैन-456010
मो. 94248-92775

सम्पादक मण्डल :
डॉ. जयप्रकाश कर्दम, दिल्ली
डॉ. खन्नाप्रसाद अमीन, गुजरात
डॉ. जसवंत भाई पण्ड्या, गुजरात
डॉ. शैलेन्द्र कुमार शर्मा, म.प्र.

कानूनी सलाहकार
श्री खालीक मन्सूरी एडव्होकेट, उज्जैन

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	अपनी बात	डॉ. तारा परमार	03
2.	संघर्ष की महागाथा : मेरा बचपन मेरे कंधों पर	प्रा. प्रकाश आठवले	04
3.	सांस्कृतिक एकता की धरोहर 'काला पहाड़'	जयदीप चौधरी	07
4.	''जैनेन्द्र के उपन्यासों में प्रमुख नारी पात्र''	शिल्पा बहन के. मकवाणा	10
5.	कविताएँ/ गीत/ग़ज़ल		13
6.	लघुकथाएँ		15
7.	दलित आन्दोलन की सशक्त अभिव्यक्ति ''लालबत्ती''	डॉ. धीरजभाई वणकर	17
8.	नारीवाद का अंतर्विरोध और परिवर्तन (पुस्तक समीक्षा)	सुश्री संदीपा दीक्षित (समीक्षक)	21

UGC द्वारा मान्यता 47816 प्राप्त पत्रिका
खाते का नाम - आश्वस्त,खाते का नं.- 63040357829
बैंक - भारतीय स्टेट बैंक, शाखा- फ्रीगंज, उज्जैन
IFS Code - SBIN0030108

Web : www.aashwastujjain.com
E-mail : aashwastbdsamp@gmail.com

एक प्रति का मूल्य	:	रुपये 15/-
वार्षिक सदस्यता शुल्क	:	रुपये 150/-
आजीवन सदस्यता शुल्क	:	रुपये 1,500/-
संरक्षक सदस्यता शुल्क	:	रुपये 10,000/-

विशेष : सम्पादन, प्रकाशन एवं प्रबंध अवैतनिक तथा पत्रिका में प्रकाशित विचारों से सम्पादक-मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। विवाद की स्थिति में न्यायालय क्षेत्र उज्जैन रहेंगा।

अपनी बात

मनुष्य अच्छे समाज की रचना के लिये और अपने जीवन के लक्ष्यों की पूर्ति के लिये स्वतंत्रता, समानता, न्याय एवं सह–अस्तित्व को समाज के नियामक मूल्यों के रूप में अपनाता है और दूसरों से अपने इन अधिकारों की सुरक्षा की अपेक्षा करता है। इसलिये व्यवस्थाकारों का यह दायित्व है कि सामाजिक नियमों, पद्धतियों एवं कानून के द्वारा ऐसी व्यवस्था की जाए कि मानव अधिकारों का किसी भी सूरत में उल्लंघन नहीं हो पाये, बल्कि उनका संवर्धन हो।

तथागत गौतमबुद्ध ने मानव अधिकारों की रक्षा के लिये सबसे पहले आवाज उठाई और एक ऐसी व्यवस्था दी जिसमें सभी मनुष्य बराबर समझे जाएं। मध्ययुगीन संत दासता की परम्पराओं के विरुद्ध लड़े और उन्होंने समानता और स्वतंत्रता का संदेश देकर हीन भावना को दूर करने के भरसक प्रयास किये और मनुष्य की गरिमा को स्थापित करने में कुछ हद तक सफलता भी प्राप्त की।

पुर्नजागरण काल में राजा राममोहनराय, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द सरस्वती, महात्मा फुले, पेरियार स्वामी आदि अनेक समाज सुधारकों ने मानव अधिकार के लिये विभिन्न आन्दोलन किये मानवाधिकार के सशक्त हिमायती के रूप में संविधान शिल्पी बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने मानव अधिकारों की प्राप्ति हेतु महान लड़ाई लड़ी।

अतीत से लेकर आज तक के परिदृश्य में दलित उत्पीड़न व त्रासदी को जितना समझने और जानने का हम प्रयास करते है तो उससे उतना ही गहरा असंतोष और आक्रोश पैदा होता है, क्योंकि यही वह तबका है जो शताब्दियों से तिरस्कृत, शोषित, पीड़ित, वंचित और असुरक्षित है। तथाकथित सवर्णों के मन–मस्तिष्क में आज भी भेदभाव के साथ ईर्ष्या व द्वेष की भावना मिटी नहीं है, वे दलित समाज के व्यक्ति को विकास करते नहीं देख सकते है। परिणामस्वरूप अब दलितों पर इसलिये अत्याचार बढ़ रहे हैं कि वे अब जागरुक हो गये है, उनमें अस्मिता की भावना जाग गई है, वे शोषण–उत्पीड़न और अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठाने लगे हैं। आज प्रिंट मीडिया, इलेक्ट्रानिक मीडिया, सोशल मीडिया में आये दिन यही खबर पढ़ने, सुनने व देखने को मिलती है कि कहीं जाति के नाम पर तो कही धर्म के नाम पर एक ने दूसरे की हत्या कर दी। इस प्रकार की घटनाएं ये दर्शाती है कि देश में जाति व धर्म के नाम पर मानवाधिकार का हनन जारी है। जाति व धर्म पर आधारित समाज ने लोगों को समान अधिकार से वंचित कर रखा है।

सशक्तिकरण–प्रक्रिया में भागीदारी तथा जाति, धर्म व लिंग के आधार पर भेदभाव समाप्त करना मानवाधिकार के लिये संघर्ष है। भारतरत्न बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने मानव अधिकार की स्थापना संविधान के द्वारा कर दी है। भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों का समावेश विश्व स्तर पर संघर्ष और संकल्पों का ही परिणाम है। हमारे संविधान में ''युनिवर्सल डिक्लेरेशन ऑफ ह्यूमन राइट्स'' में दिये गये लगभग सभी मौलिक अधिकारों को संवैधानिक मान्यता दे दी गई है। बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर मानव–इतिहास से भली–भांति परिचित थे। उन्होंने मानव इतिहास और मानव–विकृतियों का गहराई से अध्ययन किया था। इसलिये उन्होंने भारत में शासकों को मौलिक मानवाधिकारों से बांध दिया।

भारतीय संविधान की धारा–14, 17, 46, 330, 332, 343, 16, 16(4) इत्यादि दलितों को हर प्रकार के अधिकार, अवसर और सुरक्षा प्रदान करते है।

लेकिन अभी भी अन्याय, अत्याचार, उत्पीड़न, शोषण थमने का नाम नहीं ले रहा है। अभी कुछ दिन पहले मध्यप्रदेश के छतरपुर की घटना है जिसमें दलित ने खाने के बर्तन को छू लिया तो दबंगों ने युवक की इतनी पिटाई की, कि उसकी मौत हो गई। दूसरी घटना करेड़ा के शिवपुरी की है जहाँ दलित दूल्हे को घोड़े से उतार कर पीटा।

गरिमापूर्ण तथा सम्मानजनक जीवन जीने के लिये जमीनी स्तर से लड़ाई लड़नी होगी और इसकी शुरूआत छोटे–छोटे मुद्दों से आरम्भ करनी होगी, जिसमें कुँए से पानी भरने, पंचायत–दफ्तरों में बैठने, नाई के यहाँ बाल कटाने, स्कूलों में एक ही बर्तन से पानी पीने, मध्यान्ह भोजन बनाने व खाने में, मरे जानवरों को ढ़ोने, चप्पल पहनकर सवर्णों की बस्ती से निकलने, दलित दूल्हे की बारात सवर्ण बस्ती से निकालने, पुलिस तथा प्रशासन द्वारा दलितों की शिकायत दर्ज नहीं करने जैसे मुद्दों पर एक जुट होकर मुकाबला करना समय की मांग है।

डॉ. तारा परमार

संघर्ष की महागाथा : मेरा बचपन मेरे कंधों पर

प्रा. प्रकाश आठवले

साहित्य और जीवन का गहरा संबंध है। न तो जीवन को साहित्य से अलग किया जा सकता है और न साहित्य को जीवन से। सामान्यतः साहित्य को जीवन की आलोचना कहा जाता है, पर साहित्य के विभिन्न प्रकारों में से जो प्रकार साहित्य की इस परिभाषा के बिल्कुल निकट पड़ता है, वह आत्मकथा हैं। वस्तुतः आत्मकथा लिखना साहस का काम है, क्योंकि उसमें अपने बारे में सच कहना होता है। आत्मकथा सच्चे अर्थों में जीवन की आलोचना है। आत्मकथा विधा गद्य की अन्य विधाओं की भांति आधुनिक काल की देन है। यह विधा पाश्चात्यों के प्रभाव से हिंदी साहित्य में आयी है। लेखक इसमें अपने बीते हुए जीवन का सिंहावलोकन करता है। आत्मकथा जीवन का दर्पण है। आत्मकथाकार तटस्थता के साथ जीवन की मुख्य घटनाओं का वर्णन स्मृति के सहारे सत्य एवं यथार्थता के साथ प्रस्तुत करता है। आत्मकथा का मूल उद्देश्य अपना भोगा हुआ जीवन दूसरों के समक्ष रखकर उन्हें प्रेरित करना तथा बुरे के प्रति बचाव करना है। 'मेरा बचपन मेरे कन्धों पर' प्रो. डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन की मन को बेचैन करनेवाली आत्मकथा वाणी प्रकाशन, दिल्ली द्वारा सन् 2009 में प्रकाशित हुई है। इसका द्वितीय संस्करण 2013 में प्रकाशित हुआ है। 411 पृष्ठों की यह आत्मकथा बारह उपशीर्षकों में विभाजित हैं। इसमें लेखक ने बचपन से लेकर दसवीं पास होने तक का इतिहास दोहराया है। इस आत्मकथा के बारे में वरिष्ठ पत्रकार और प्रभारी सम्पादक हार्ड न्यूज के अमित सेन गुप्ता कहते हैं कि, ''यह एक महाकाव्यात्मक बचपन का एकालाप है, जिसमें बहुसंख्य आवजें संलिप्त हैं।''[1] (भूमिका से)

बेचैनजी का जन्म नदरोली, जिला–बदायूँ (उ.प्र.) में 5 जनवरी, 1960 को एक दलित परिवार में हुआ है। इनका बचपन गरीबी और पारिवारिक संघर्ष में व्यतीत हुआ है। इनका जीवन अभावों और भावनाओं का भण्डार रहा है। बेचैन जी का बचपन अनेक अभावों में बीता हैं। इनके जन्म के कुछ साल बाद ही पिता राधेश्याम जी की अचानक मौत हो जाती है। बचपन में मिले पिता प्रेम के अभाव के बारे में लेखक लिखते हैं, "अब हमारी तबाही और अभावों का क्रम तेज हुआ। तब जाना कि पिता क्या होता है। उसकी कमी बच्चों के जीवन में कितनी बड़ी त्रासदी होती है।"[2] उपचार के अभाव में छोटे भाई नेकसिंह की मृत्यु हो जाती है। बेचैनजी ने आत्मकथा में गरीबी का यथार्थ वर्णन प्रस्तुत किया है पिताजी के गुजर जाने के बाद आयी गरीबी का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं, ''उनके बाद हमारे घर में साग–सब्जी से भरपेट खाना मिलना तो दूर, दोनों वक्त नमक–चटनी से भी रोटी मिलनी मुश्किल हो गयी थी। हारी–बीमारी में दवा–दारू के लिए भी अब घर में फूटी कौड़ी नहीं थी। ऐसे संकट काल में मुझसे छोटा भाई नेकसिंह बीमार पड़ा और उसका कोई उपचार नहीं हो सका। इलाज–दवा तो दूर, दो वक्त की दाल–रोटी के लाले पड़े हुए थे। अम्माँ के शरीर पर चाचा के मरने के बाद से कोई नया कपड़ा नहीं आया था।''[3] पिता के मृत्यु के पश्चात दो वक्त की रोटी मिलनीभी मुश्किल हो जाती है और न ठीक समय पर उपचार हो पाता है। भूख खतरनाक होती है, जो आदमी को कुछ भी करने के लिए विवश करती है। लेखक बचपन में तीव्र भूख लगने पर अपनी माँ के साथ विषाक्त ढडायन खाकर अपनी भूख मिटाते है। लेखक को कभी–कभी खाने के लिए अमरूदों की चोरी करते समय पकडे जाने पर मार खानी पडती है। यादवों के घरों में जो धोवन या लदोई कुत्तों या बैल–भैसों को खिलाई जाती थी, उसे चाचा के समवेत खानी पडती है। परिवार में डोरिलाल, गंगासहाय और प्यारे तीनों

भाई भूमिहीन थे, उनका जीविका चलाने का एक मात्र साधन मुर्दा मवेशी उठाना ही था। जीविका चलाने के लिए चल रही जिद्दोजहद की जानकारी देते हुए लेखक लिखते हैं, "बब्बा और मैं उन्हीं के साथ मुर्दा उठवाने जाते थे। खाल उतारने के बाद उसमें से सेर दस सेर मांस भी निकाल लिया जाता था। झटका मीट की तुलना में वह मुर्दा मांस एकदम बेस्वाद होता था, परन्तु पेट की आग बुझाने के लिए वही भोज्य था।"[4] लेखक को परिवार से विरासत में बेगारी, चमरई और गुलामी मिलती है।

लेखक को बचपन में अपनी माँ और बहन के साथ काम करने जाना पड़ता हैं इसके बारे में वे लिखते हैं, "उन दिनों मैं ईख छिलने, सिला बीनने, आलू खोदने और कभी घास खोदने आदि कामों में 'अम्माँ' और बहन के साथ जाया करता था।"[5] इससे हमें लेखक का जीविकापार्जन के लिए चल रहा संघर्ष दृष्टिगोचर होता हैं। बेचैन जी को शिक्षा प्राप्ति के लिए काफी संघर्ष करना पडता है। लेखक बचपन से ही पढ़ाई करने में तेज थे। उन्हें गरीबी के अभाव में किताबें खरीदने के लिए पैसे न होने से चोरी भी करनी पडती हैं। लेखक अध्यापक प्रेमपाल सिंह यादव के घर में बंधुवा मजदूर बनकर कठोर मेहनत करके दसवीं तक शिक्षा प्राप्त करते है। जैसे ही उन्हें पता चलता है कि शिक्षा से ही जिंदगी में सुधार एवं परिवर्तन आ सकता है तब उसे प्राप्त करने के लिए एक बालक कठोर परिश्रम, मेहनत, मजदूरी, साहस और संघर्ष से आगे बढ़ता है। धुर्रा, प्रेमनगर बुआ के घर में रहने के लिए विरोध करनेवाली महिला के हृदय परिवर्तन होने से घर रहकर पढ़ाई करने का मौका मिलते ही वह हाथ से जाने नहीं देता। स्कूल अवकाश के समय गाँव में मवेशी उठाना, खाले निकालना तथा उन्हें बेचना आदि काम भी करता हैं। श्यौराज सिंह ने शिक्षा प्राप्त करने के लिए हमेशा सकारात्मक दृष्टीकोण अपनाया है इसके बारे में वे कहते हैं कि, "मैं पढ़ूंगो, एक फेरा कोशिश जरूर करंगो। अगर दसवीं पास नॉयकरि पाओ, तो हार मान लिंगो, पर बिना कोशिश करे तो नॉय मानंगो। कोई मेरो संग्गु देउ या मत देउ। मैं एक–एक अक्षर के बदले अपने खून कि एक–एक बूंद दे दुंगो पर पढ़नो नॉय छोडूंगो। सोड जाए करंगो मास्टर जी के घेर में। भाड़ में जाइ बिरादरी और चूल्हे में जाइ घर–परिवार मै पढ़ूंगो, अपने बलबूते पै।"[6] लेखक पर पढ़ने की दीवानगी सवार होने से कुछ किताबें खरीदते तथा कुछ चुराते भी हैं। इसके बारे में वे लिखते हैं कि, "पेट को रोटी और दिमाग को पढ़ाई की भूख लगती थी। इसके लिए मैं यदाकदा विक्रेता से पुस्तकों की चोरी भी कर लिया करता था।"[7] इससे हमें लेखक का पढ़ाई के प्रति होनेवाला नशा स्पष्ट दिखाई देता हैं।

लेखक जब दिल्ली में अपने मौसा देवीदास जी के यहाँ पढ़ाई के लिए जाते है, तो उन्हें अनेक जगहों पर काम करने पड़ते हैं जैसे–रगड़ाई के मशीन पर, नींबू बेचने, पेपर डालने, केले बेचने तथा अण्डे उबालकर बेचने आदि। एक निकिल कारखाने में हैल्परी का काम करने तथा चालीस रूपये मासिक वेतन पर एक होटल में बर्तन साफ करने का काम करना पड़ता है। श्यौराज सिंह अपने ताऊ बाबूराम के साथ फूट पाथ पर बैठ बूट–पालिश करते, साइकिलों के टायर सिलते और आस–पास पैंठ बाजार जूते गाँठने का काम करते है। रात को इसी बरांडे में ताऊ के पास आकर रहते, खाते और सोते है। लेखक पेट की आग बुझाने के लिए गैरों की बारात में जाकर खाना–खाने, गंगा–स्नान करने आयी बुढ़िया की पोटली चुराने का प्रयास करते है। इतना ही नहीं पैसे के लिए बारात में जाकर ढोल बजाने के साथ 1973–74 में बाल मजदूर के रूप में बेलदारी करते है। आत्मकथाकार को अपने जीवन के सभी क्षेत्रों में निरंतर काफी संघर्ष करना पड़ा है। छोटी उम्र में ही पिताजी की आकस्मिक मृत्यु से लेखक को पिता के स्नेह का साया बहुत कम मिलता है। उनके लिए माँ ही सब कुछ थी। उन्हें छोटी सी उम्र में कड़ी मेहनत करनी पड़ती हैं किन्तु वे कतई हिंमत नहीं हारते। माँ के साथ ईट

उठाने, बेगार–मजदूरी करना, धान रोपने, ईख काटने, मक्का नुकाने जैसे काम में जुट जाया करते थे फिर भी उन्हें पेट भर भोजन नहीं मिलता था। लेखक इस संदर्भ में लिखते हैं कि, "उन दिनों गन्ने की बुआई, ईख की खुदाई, फिर गन्ना छीलने, ढोने, कोल्हू चलाने, भट्ठी में खोई–पाती झोंकने यानी हर स्थिति में हमारा श्रम शामिल था, लेकिन मिलता क्या था? कभी सेर आधा सेर अन्न, कभी दो वक्त की रोटी तो कभी धोवन या लदोई।"[8] उन्हें मजदूरी करके गुजारा करना पड़ता है। लेखक का पूरा बचपन अभाव में गुजरा दिखाई देता है जिसकी लम्बी संघर्ष यात्रा रही है लेखक लिखते हैं कि, "कितनी लम्बी संघर्ष यात्रा क्रम में जिन्दगी इस मुकाम पर पहुँची है, कहा नहीं जा सकता। जो सोने लायक नहीं था, वहाँ सोया, जो पहनने लायक नहीं था, उसे पहना और जो खाने लायक नहीं था, उसे खाया। कैसी–कैसी मजबूरियाँ झेलनी पड़ीं, यह सवाल मेरे भीतर लावे की तरह आज तक जल रहा है" ।[9] लेखक का बचपन उनके कन्धों पर था। वे हिंमत नहीं हारे। जीने के लिए झूझते रहे। असल में बचपन के दिन खेलने–कूदने के होते है किन्तु उन्हें बाल मजदूर बनना पड़ता है। जीने के लिए क्या–क्या नहीं किया– मसलन नींबू बेचने का काम, निराई–कटाई का काम, कारखाने में हैल्परी, रहड हाँकना, दुकान में झाडू मारना, ईखे खोदना आदि कामों से लेखक के बाल मजदूरी के दर्शन होते है।

लेखक ने बचपन में जूते पालिश करने, कोल्हू झोंकने, बैल हांकने, मजदूरी करने, हल चलाने, खेत जोतने, होटल में बैरे का काम करने, फर्श घीसने का काम करने, गली–गली में नींबू, अंडे बेचने के लिए चक्कर लगाने जैसे कार्यों के साथ मवेशी उठाने, खाल निकालने के काम भी किए हैं। उन्हें कभी भट्ठों पर ईट पाथने के काम में लगाया जाता है तो कभी फसल कटाई और अनाज निकालने के लिए भी, इतना ही नहीं मास्टर जी के यहाँ घरेलू काम भी करने पड़ते है। बेचैन जी कड़ा संघर्ष कर पढ़ाई पूरी करते हैं। वे अपनी सीढ़ी खुद बने और उस पर चढ़े नजर आते हैं। उन्होंने आर्थिक अभावों के बावजूद एम.ए. के बाद पी–एच.डी. और डी.लिट् की उपाधि प्राप्त की। बेचैन जी ने शिक्षा प्राप्ति के प्रति कड़ा संघर्ष करते हुए लाखों–करोड़ों बहुजनों को संदेश दिया हैं कि कितनी भी कठिनाइयों का सामना क्यों न करना पड़े हम हिम्मत और संघर्ष से मंजिल को प्राप्त कर सकते हैं।

निष्कर्ष :

यह आत्मकथा बेचैन जी के भोगे हुए जीवन की यथार्थ घटनाओं की त्रासदी है। जिसमें उन्हें मिले पिताजी के प्रेम का अभाव, गरीबी, लाचारी, अपने साथियों का छलकपट, दुर्व्यवहार, जातीय भेदभाव जैसी यातनाओं से संघर्ष करते–करते अपना बचपन अपने कन्धों पर लेकर व्यतीत किए जीवन की कहानी प्रस्तुत की है। उन्होंने तत्कालीन आर्थिक, सामाजिक और शैक्षिक परीस्थितियों से कभी हार न मानते हुए साहस और निडरता से डटकर सामना किया है। इसमें लेखक ने जीविकापार्जन तथा शिक्षा प्राप्ति के लिए जो कठोर परिश्रम, मेहनत और मजदूरी की है उसका यथार्थ वर्णन प्रस्तुत किया है। इस आत्मकथा की विशेषता यह है कि लेखक का जीवन अपने कन्धों पर संघर्षरत होकर आगे बढ़ता हुआ दृष्टिगोचर होता है। अंततः हम कह सकते हैं 'मेरा बचपन मेरे कन्धों पर' बालक के यातनामय संघर्ष की महागाथा है।

कर्मवीर भाऊराव पाटील कॉलेज, इसलामपुर
मोबा. 9730139183

संदर्भ :

1) श्यौराज सिंह बेचौन– मेरा बचपन मेरे कन्धों पर (2013) वाणी प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संस्करण– 2013, 'भूमिका से'
2) वही, पृष्ठ क्र.28
3) वही,पृष्ठ क्र.29
4) वही,पृष्ठ क्र.87
5) वही,पृष्ठ क्र.39
6) वही,पृष्ठक्र. 301
7) वही,पृष्ठ क्र. 266
8) वही, पृष्ठ क्र. 186 9) वही, पृष्ठ क्र. 185

सांस्कृतिक एकता की धरोहर 'काला पहाड़'

जयदीप चौधरी

आधुनिक युग जहाँ अपनी नयी–नयी विधाओं के लिए व्यक्ति की निजी जीवन संबंधी तथा विविध समाज की दशा एवं विमर्शों को लिए खड़ा है, वहीं भगवानदास मोरवाल अपने अंचल की स्थानिक गतिविधियाँ तथा सांस्कृतिक एकता को लिए श्रीलाल शुक्ल की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए 'काला पहाड़' जैसा अप्रतिम एवं बेजोड़ उपन्यास लिख कर साहित्य जगत में अपना नाम दर्ज करा चुके हैं। हमारे देश की विशेषता है कि, यहाँ बसनेवाले व्यक्ति विविध धर्म, विविध जाति एवं विविध क्षेत्रों से है। अतः सभी प्रकार से विविधता होने के बावजूद भी विविधता में एकता देखने को मिलती है। यह हमारे लिए बड़े गौरव की बात है।

इस उपन्यास का कथा क्षेत्र मेवात यानी हरियाणा, राजस्थान, दिल्ली के सीमा क्षेत्र है। जहाँ हिंदू और मुस्लिम दोनों धर्म के लोग आपस में मिल–जुलकर बड़े चैन से जीते हैं। यह अलग बात है कि, यहाँ की राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक स्थितियों में इस क्षेत्र को अन्य क्षेत्र की अपेक्षा विकास और सुविधाओं की कमी देखने को मिलती है। इसके बावजूद भी यहाँ रहने वाले लोग अपनी मस्ती में लोगों के साथ अपनी–अपनी सांस्कृतिक कश्तियों में बिठा के जैसे विविध रंग एवं फूलों से बनी माला की तरह एक साथ खुशियाँ मनाते हैं। रचनाकार ने इन लोगों के हर एक रीति–रिवाज, रस्मों और दोनों संस्कृति को एकदम निकट से प्रस्तुत किया है। तभी डॉ. मधु खराटे कहते है कि, 'काला पहाड़' उपन्यास केवल शीर्षक मात्र नहीं है, अपितु मेवात की भौगोलिक–सांस्कृतिक अस्मिता की प्रमाणिक प्रस्तुति है।

काला पहाड़ अपने आप में एक बहुत बड़ा पहाड़ है जो अपनी तलहटी में बसे दो अलग–अलग धर्म के लोगों की सांस्कृतिक एकता की कहानी कहता है। यह दोनों धर्म के लोग आपस में इस तरह मिले–जुले है कि पता ही नहीं चलता कि कौन किस धर्म से है। क्योंकि दोनों धर्म के पर्व जैसे ईद, दिवाली या कोई क्षेत्रीय त्यौहार क्यों न हो बड़े ही आनंद से मिलकर मनाते हैं। सावन में तीज के दिन लगने वाली पतंगबाजी में सारे गाँव वाले एक होकर इस उत्सव का मजा लेते हैं।

''जिसे देखो वही मुँह उठाए चौक को खूँदता हुआ सीधा छत पर ही जाकर दम ले रहा है। किसी को पता ही नहीं चल रहा है कि ऊपर जाने वाला चमार है या चूहड़ा, खटीक है या कुम्हार, मेव है या माली–बस, सीधे अपने बाप की छत समझ कर दनदनाते हुए चले आ रहे हैं।''[1]

हर व्यक्ति बस उत्सव का मजा ले रहा है। वो किस जाति से हैं? किस धर्म से हैं? किसी को कुछ फर्क नहीं पड़ता। साल में एकबार मनाने वाले इस पतंगबाजी के त्यौहार को नगीना और आसपास के सभी गाँव वालों को बेसब्री से इंतजार रहता।

उपन्यास का मुख्य पात्र सलेमी जिसके माध्यम से यह कहानी कही गई है। जिसने इस क्षेत्र की हर घाटी और धूलभरी पगडंडियों को अपने जिस्म से लगाकर जिया है। सलेमी इस उपन्यास का ऐसा पात्र हैं, जो इस सांस्कृतिक विरासत को बनाए रखने और आपस में एकता और प्रेमभाव के लिए अपने अनुगामी लोगों को इस क्षेत्र की मिली–जुली एकता की कहानी सुनाता रहता है। उपन्यास के शुरुआत में जब प्रधानमंत्री चौधरी अतर मोहम्मद भाषण करते हुए मेव और हिन्दू जाति की एकता और संप (अपनत्व) के बारे में कहते हैं कि

''...और भाइयों, हमें अपना या इलाका पे बहोत फखर है कि आज तलक या में कोई फिरकाना फसाद ना हुओ है, सबसू बड़ी बात तो ई है के या इलाका में हिन्दू और मेव एक कुणबा की तरह रहता आया है।''[2]

लेखक बताते है कि, यह वही मेव जाति और हसन खां मेवाती के वंशज है, जो सालों पहले उस क्षेत्र के राजा राणा सांगा के सेनापति थे। उस वक्त बाहर से

आये विदेशी शासक बाबर ने हसन खां मेवाती को राणा सांगा के खिलाफ लड़ने के लिए और उसको साथ देने के लिए ललचाया था। लेकिन अपनी मातृभूमि और मुल्क के लोगों के प्रति प्रेम और कर्तव्य निभाते हुए बाबर का सामना किया था। जिसका गवाह इतिहास है। उतना ही नहीं सन 1933 में महात्मा गाँधी ने भी इसी मेव जाति के बहादुरी और देशभक्ति के गुणगान गाए थे और इसी गाँधी ने इन मेवों को मुल्क के बंटवारे के वक्त पाकिस्तान जाने से रोका था। इन्हीं अच्छे कार्यों से हमें इस इलाके में बसे दोनों अलग–अलग धर्म के लोगों की एकता का पता चलता है।

नगीना और आसपास के गाँवों में बसने वाले लोग दोनों धर्म के त्यौहार पूरे जोश और उत्साह के साथ मनाते है। उपन्यास का केन्द्रस्थ पात्र सलेमी है, जो मेव यानी मुस्लिम होने के बावजूद भी हिन्दूओं के दिल में बसे हुए है। मनीराम और रुमाली के बड़े बेटे बनवारी का नामकरण भी सलेमी ने ही किया था। उतना ही नहीं, लड़का होने पर मनीराम और रुमाली ने गाँव में आए दादाखानू की मजार पर चादर और गलेप चढ़ाने के लिए भी सभी मोहल्ले के लोग एक साथ मिलकर गए थे। दादाखानू की मजार पर चादर चढ़ा के दादा भरपूला बच्चे के लंबे भविष्य और उसके परिवार की खुशहाली के लिए दुआएँ देता हैं–

"चद्दर में लिपटे हुए मासूम बच्चे के चेहरे से दादा भरपूला ने चद्दर हटाई और होठों ही होठों में कलमा बुदबुदाने लगा, 'ला इला इ इल्लल्लाहु मुहम्मदुर्रसूल्लुल्लाह....अश्हदु अल्लाइला–ह हल्लल्लाहु वहदूह ला शरी–क लहू व अश्हदुअन–न मुहम्मदन अब्दुहू व रसूलुह..... ।'

कलमा पढ़ने के बाद शिशु के चेहरे पर फूंक मारने के बाद बच्चे को वापस मनीराम को देते हुए दादा भरपूला बोला, ''ले मनीराम, अल्ला ने चाही तो छोरा को जीते जी बाल भी टेढो ना होएगो.....सारा आसेब सू बचो रहेगो....''[3]

दादाखानू की दुआएँ लेने के बाद पूरा हुजूम पचपीर पर गलेप चढ़ाने के लिए चल पड़ा। जहाँ से भी अपने बेटे के लिए आशीष तथा दीर्घायु और कल्याण के लिए मन्नत मांगते है। इस प्रकार दोनों संस्कृति के दैव स्थानों पर जाते है। जिससे हमें उनकी सांस्कृतिक एकता का पता चलता है।

सलेमी की शादी के वक्त सारी तैयारियाँ सब लोगों ने मिलकर की थी। शादी से पहले ही सलेमी के पिताजी भूरे खां ने जुगली सुनार से सभी गहने और रुपा बनिया की दुकान से कपड़े–लत्ते के लिए कह दिया था। इन लोगों के बीच इतना मेल–जुल था कि बगैर पैसों से सब गहने और कपड़े जैसी चीजे देने के लिए तैयार हो जाते है। सभी परिवारों और रिश्तेदारों में शादी का न्यौता भूरे खां ने भिजवा दिया था। नगीना के सभी मोहल्ले चमारवाडा, कुम्हारवाडा, ऊपर लीघां, नीचल्लीघां सभी जगहों पर न्यौता भेज दिया था। उतना ही नहीं शादी में हिन्दुओं के लिए खाने का अलग से इन्तजाम किया था। जिसकी वजह से किसी भी हिन्दू व्यक्ति को अपने धर्म भ्रष्ट होने का या अपनी नीतियों का टूटने का डर ना हो।

''भूरे खां ने उनकी भावनाओं का आदर करते हुए हिन्दूओं के खान–पान का अलग से इन्तजाम करवाया है।..... कन्हैया, मैं सब समझ रो हूँ तू जहाँ बोल रो है..... फिकर मत कर मैंने पहले ही तम जैसान् कू सुखा चावल, घी, बूरा और तीन–चार कोरा मटका अलग धरवा दिया हैं..... साथ में तिहारी एक अलग भट्टी खुदवा दूंगो..... तिहारो जैसो जी करे, अपणी मरजी सू कादम रख लीओ..... बस रांदो और खाओ..... कन्हैया, तू कहा समझ रो है मैं कोई इतेक बावलो हूँ!" हँसते हुए भूरे खां बोला।''[4]

एक बार नगीना में जेठ की भीषण तपती माह में आँधी के साथ आग भी लपक कर मिल गई। फिर तो पूरा गाँव जैसे एक राख के ढेरे में बदल गया। कुदरत के इस होनारत को कोई नहीं टाल सका। गाँव में कई लोगों के घर जल गये, जिसमें सुलेमान का घर भी न बचा। सुलेमान की पत्नी अशरफी इस होनारत से अपना मानसिक संतुलन खो बैठी। जिसके कारण एक

दिन अशरफी दादाखानू के कुएँ में कूद गयी। देखते ही देखते सारे गाँव वाले वहाँ पहुँच गए। गाँव के हुसैनदीन, सुभान खां और लिच्छमन चमार का बेटा बोला अशरफी को बचाने के लिए बिना सोचे, समय न गंवाते हुए रस्सी लेकर कुएँ में कूद पड़े –

"हुसैनदीन ने कुएँ में उतरकर रस्सी के सहारे गहरे पानी में दो–तीन गोते लगाए लेकिन अशरफी उसके हाथ में नहीं आई। तब तक सुभान खां और भोला भी पहुँच गए नीचे। तीसरा गोता लगाते लगाते हुसैनदीन की सांसे फूलने लगी। उसके बाद भोला ने पहला ही गोता लगाया कि उसके हाथ में अशरफी की चोटी आ गई ।''[5]

इस प्रकार गाँव के सभी लोग मुश्किलों में एक दूसरे का साथ देते। सलेमी इस उपन्यास का ऐसा पात्र है जो सदैव इन दोनों धर्म के लोगों के बीच एकता बनाए रखने के लिए सदा तत्पर रहता है। यहाँ तक कि, अपने बेटे बाबू खां के द्वारा दादाखानू की मजार से कीकर के पेड़ काटने पर, रामचंदर धोबी की लड़की को छेड़ने पर तथा उसके साथी हाजी असरफ और सुभान खां के साथ हिन्दू लोगों के खिलाफ जहर घोलने पर सलेमी खुद बाबु खां को पीटता है और डाँटता है। सलेमी नहीं चाहता कि इन दोनों धर्म के लोगों के बीच किसी भी प्रकार का तनावपूर्ण वातावरण पैदा हो। मिली–जुली संस्कृति को सदा के लिए एक रखने के लिए प्रेम पूर्वक रहने का संदेश देता है। छह दिसम्बर को हुए बाबरी मस्जिद के विध्वंस की असर मेवात में भी हुई। इस फसाद की लपक कहीं नगीना में न लग जाए इसकी वजह से सलेमी धूप में दौड़ कर खुली दुकानें बंध करवा रहा था। ताकि इन बलवाइयों के द्वारा उनकी दुकानों को लूट कर कहीं आग से जला दी न जाए। तीस तारीख को होने वाले दंगा फसाद की झूठी अफवाह को ध्यान में रखते हुए शहर गया हुआ बनवारी गाँव से अपने माँ–बाप रुमाली और मनीराम को भी शहर ले जाने के लिए जिद करता है, लेकिन मनीराम सलेमी और दूसरे नेक दिल इन्सान को ध्यान में रखते शहर जाने से मना करता है तथा खुद दादाखानू पे विश्वास रखते हुए कोई अनहोनी या ऐसी दुर्घटना न होने की आस्था रखते हुए कहता है–

"घबराए मत, दादाखानू ने चाही तो कुछ भी ना होएगो।" मनीराम ने दादाखानू का स्मरण कर उसके प्रति आस्था प्रकट करते हुए कहा।''[6]

मनीराम, हरसाय, सूरज तथा मुहल्ले के अन्य लोग भी धीरे धीरे शहर की ओर प्रयाण करने लगे। एक मनीराम ही था जिसके आगे सलेमी अपने मन का गुबार निकाल सकता था। सलेमी धीरे–धीरे जैसे क्षीण होता चला गया। सालों से चली आ रही सांस्कृतिक एकता धुएँ की तरह ऊँचे बादलों में लुप्त होती नजर आयी। बरसों से रह रहे इस क्षेत्र के लोगों पर से मानो विश्वास ही उठ जाने की बात करता है। सलेमी अपने मन का दुःख व्यक्त करते हुए छोटेलाल से कहता है

"छोटेलाल, अब तोसू कहा कहूँ..... अन्यायी, हमारे ऊपर सू तो जैसे अकीन ही उठगो..... अब बता, मनीराम और हरसाय जैसा माणस भी छोड़ के चला गा..... मैंने खूब हाथ जोड़–जोड़ के कह दी के मनीराम मेरे जीते–जी या मुहल्ला का एक भी हिन्दू को बाल बांको हो जाए तो ई सलेमी जीते–जी माटी ले जाएगो.....पर वाने एक ना सुणी।'' सलेमी ने आहत होते हुए कहा।''[7]

जब सलेमी छोटेलाल के मूंह से गाँव छोड़कर न जाने की बात सुनता है तो उसे बहुत सुकून मिलता है। छोटेलाल से बात करके उसे आत्मीयता का एहसास होता है। उतना ही नहीं दूसरे दिन फसाद की बात सुनकर सलेमी छोटेलाल को घर से बाहर न निकलने को कहता है और काम पर भी न जाने को कहता है।

पूरे उपन्यास में सलेमी अपनी सामाजिक एकता और सांस्कृतिक एकता को बनाये रखने के लिए सजग है। काला पहाड़ की आड़ में बसी दोनों संस्कृति अपने आप में इंसानियत का उत्तम उदहारण है। यह उपन्यास भविष्य में लोगों को अपने मेवात की साझी सांस्कृतिक एकता की कहानी सुनाएगा।

पीएच–डी. शोधार्थी
हिन्दी विभाग
सरदार पटेल विश्वविद्यालय, वि.वि. आणंद–388120
मोबा. 9334154845

संदर्भ सूची :

1. 'काला पहाड़' – भगवानदास मोरवाल
   राधाकृष्ण प्रकाशन, 1999 – पृ. 36
2. वही पृ. 16
3. वही पृ. 58
4. वही पृ. 116
5. वही पृ. 212
6. वही पृ. 319
7. वही पृ. 320

''जैनेन्द्र के उपन्यासों में प्रमुख नारी पात्र''

शिल्पा बहन के. मकवाणा

भूमिका :

नारी जीवन की भूमिका एवं उसकी समस्याओं को लेकर हिन्दी उपन्यास और कहानीकारों ने तेजी के साथ काम किया है, आज भी स्त्री विमर्श चला आ रहा है। आज के सामाजिक परिवेश में नारी की स्थिति नारी पुरुष के पारस्परिक संबंध नारी के प्रति पुरुष का संकुचित दृष्टिकोण एवं पुरुष के साथ आधुनिक नारी की सहायता का सही चित्रांकन कथा साहित्य के माध्यम से सफल हुआ है। आजादी के बाद के उपन्यासों में नवीन जीवन मूल्यों के वर्णन के साथ विद्रोह का स्वर स्पष्ट दिखाई देता है। जैनेन्द्र ने अपने गौण उपन्यासों में नारी के विविध चरित्र प्रस्तुत किए है ।

'विवर्त' में नायिका भुवनमोहिनी स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की उच्च शिक्षा प्राप्त आधुनिक नारी का प्रतिरूप है। पूर्व के उपन्यासों मे ऐसी नायिका की सामान्यतः परिकल्पना नहीं की जा सकती थी जिसमे विधि में आधी प्राप्त की हो, जैनेन्द्र की नायिकाओं की तरह भुवनमोहिनी भी विदुषी और सुन्दरता के साथ अभिमान वर्ग की है, प्रेमी वही साधारण परिवार का है। नायिकाओं को वर्ग विशेष से संबध करने का भी उदेश्य है। जितेन की अस्वस्थता में मोहिनी जी जान से उसकी सेवा सुश्रुषा करती है, किन्तु उसके मन में आंतरिक संघर्ष निरंतर चलता रहता है कि वह पति से बताये या नहीं कि जितेन कौन है ? और किसलिए यहाँ आया है। जन्म की दुखीनी, अभागिन, अनपढ़ होकर भी तिन्नी का विशाल हृदय, निश्छल प्रेममय है। वह सेवा तथा ममता की मूर्ति है" स्नेह उसके नेत्रों में हर पल छलकता रहता है। उसके मन में किसी प्रकार की ग्रन्थि कुंठा या हीनभावना नहीं है। वह सरल चरित्र है।

'व्यतीत' में जैनेन्द्रजी के प्रसिद्ध उपन्यास नायिका 'अनिता' एक आधुनिक विचारों वाली तथा बुद्धिवादी नारी पात्र है। इस उपन्यास में जैनेन्द्र जी ने पति–पत्नी और प्रेमी का त्रिकोण रूप प्रस्तुत किया है "व्यतीत" में चन्द्री का व्यक्तित्व तथा पत्नीत्व अनोखा है। उसमे दंभ है, अहंकार है, लेकिन सेवा भाव भी है। एक बार जयंत के मन की ग्रन्थि को समझकर उसने अपने पति पर अपना आधिपत्य करने की कोशिश नही की। वह स्वयं को अनिता और अपने पति जयंत के बीच दिवार बनना नहीं चाहती। अनिता जयंत को इस स्थिति में देखती है तो उसके मन में जयंत के प्रति अत्यन्त करुणा उमड़ पडती है। उसे ज्ञात है की प्रेम में असफल होने पर ही जयंत में यह भटकाव आया है। वह पति को प्रसन्न रखते हुए उनकी जानकारी में जयंत को कुंठामुक्त उसके जीवन को भी संवारने का प्रयत्न करने में लगी रहती है।

'जयवर्धन' में 'इला' जयवर्धन से प्रेम करती है, उसका प्रेम अत्यन्त सात्विक है। राजरानी पन से उसे कोई मोह नहीं है। वह तो बस जय को पति के रूप में पाना चाहती है। उसके चरित्र में प्रेम व विवाह का सुंदर समन्वय हुआ है। इला का दुर्भाग्य ही था कि विवाह के तुरंत बाद ही शिवधामपुर के सम्मेलन में, जय अपने पद से त्यागपत्र देकर, आश्रम और इला दोनों को छोड़कर चला जाता है। विवाह के अगले ही दिन जय के उसे छोड़कर चले जाने से इला विवाह के पश्चात भी विरहणी रह जाती है और उसका पत्नीत्व अधूरा ही रह जाता है। 'जयवर्धन' उपन्यास की 'इला' अविवाहित जयवर्धन के साथ समपूर्ण अधिकार के साथ मन से समर्पित होकर एक धर्मपत्नी की तरह, 20 वर्षों से

जयवर्धन के राजमहल में रहती है । वह अविवाहित होकर जयवर्धन के साथ रहती है, इसलिए लोकोपवाद की शिकार होती है।

'मुक्तिबोध' की नीलिमा धनपति घर की पत्नी है। उसका वैवाहिक जीवन सुखी व खुशहाल है। वह एक आधुनिका है, 'नई नारी' है, शायद इसीलिए उसमे गृहणी रूप का अभाव परिलक्षित होता है। मुक्तिबोध में राजश्री एक पतिव्रता पत्नी ही नही, एक वात्सल्यमयी मां भी है। गृहस्थी की बागडोर उसी के हाथों में है, वह अपने पुत्र, पुत्री, दामाद, नाती, नातिन सबके प्रति अपनी जिम्मेदारियों के बीच वह अपने पति के प्रति अपने कर्तव्यों का भी निर्वाह करती है।

राजश्री पति की अनुग्रता है, किन्तु वह रूढ़ नहीं है–जागरूक है और समर्थ भी। वह जानती है कि सहाय के मंत्रिपद त्याग की बात केवल ढकोसला है और वस्तुतः सहाय के मन में उसके प्रति मोह है। राजश्री में पति निष्ठा है, अपने प्रति आत्मबल है, और परिवार तथा सामाजिक सबंधों के प्रति व्यवहार कुशल है। सेवा ही उसके जीवन का मूल मंत्र है । यौन जीवन की पवित्रता को दरकिनार कर सहजीवन तथा सहभोग में रत रहने से उदिता बिना विवाह किये गर्भ धारण करती है। जैनेन्द्र के उपन्यासों में वह अकेली ऐसी नारी पात्र है जो बिन ब्याही माँ बनती है, किन्तु, ऐसा करके वह लज्जित नहीं होती है।

"अनामस्वामी'' 'वसुंधरा' का चरित्र दुविधाग्रस्त है। वसुंधरा कुमार की परणीता है। विवाह से पूर्व वह शंकर उपाध्याय से प्रेम करती थी, किन्तु विवाह कुमार के साथ हुआ। वसुंधरा ने विधि का विधान समझकर इस सबंध को स्वीकार भी कर लिया। जैनेन्द्र की मान्यता है कि नारी माँ बनकर ही पूर्ण होती है उसके जीवन की सार्थकता मातृत्व में ही है। जैनेन्द्र ने वसुंधरा के माध्यम से अपने इस विचार की पुष्टि की है। भारतीय संस्कृति में नारी के लिए पुत्र प्राप्ति आवश्यक थी, इसीलिए पति की मृत्यु होने पर या किसी अन्य कारण वश संतान उत्पति में पति के असमर्थ होने पर स्त्री को नियोग द्वारा पुत्र प्राप्ति का अधिकार था। इस उपन्यास में इस प्रथा को समर्थन प्राप्त हुआ है। उदिता दो–दो पुरुषों के साथ यौन सबंध स्थापित कर गर्भवती हो जाती है और अंततः पत्नी शायद प्रेयासीयत्व की चरम परिणति रूप में जैनेन्द्री के अभिव्यक्ति का सुपरिणाम है। जैनेन्द्र ने अनामस्वामी में उदिता के माध्यम से नई पीढ़ी का ऐसा रेखाचित्र अंकित किया है। उसकी झलक आज के समाज में दृष्टीगोचर हो रही है बल्कि देखा जाए तो यह उच्छृंखलता हमारे समाज के लिए एक समस्या बन चुकी है।

आज के समाज में तलाक तथा तलाक के बाद विवाह को लोग बुरा नहीं मानते। जबकि इसको सदियों पहले कोई सोच भी नहीं सकता था, पर पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के कारण लोग इसे बुरा नहीं मान रहे है । जैनेन्द्र जी के उपन्यास में एक नारी पात्र ऐसी भी है जो भारतीय है पर वह अमेरिका में जा बसी है तथा कई बार प्रेम करती है छूटता है, अंत में वह विवाह कर लेती है। अनामस्वामी की उदिता ऐसी ही नारी पात्र है। वह अमेरिका में रहने लगती है और तलाक के बाद विवाह करती है।

'दशार्क' की रंजना वैश्या बनने से पूर्व सरस्वती थी। अर्थाभाव के कारण पति हीनता ग्रंथि का शिकार हुआ तो सरस्वती के साथ वर्षों का वैवाहिक जीवन अर्थहीन प्रतीत होने लगा। वह अपने घर बनाए रखने का हर संभव प्रयत्न करती थी, पर अपने प्रयासों में सफल नहीं हो पाती। अंततः पति द्वारा घर से निष्कासित कर दी जाती है। आखिर पत्नी का अंत हुआ और रंजना का आविर्भाव हुआ। रंजना कहती है की वैश्यापन क्या है ? क्यों है ? और कैसे मिट सकता है। इस पर जैनेन्द्र जी ने अपने इस उपन्यास 'दशार्क' में गंभीरता से विचार किया है। दशार्क की रंजना उन्ही विचारों की प्रतीक है। जैनेन्द्र जी की सहानुभूति और करुणा रंजना और उसके जैसी तमाम स्त्रियों के साथ है।

रंजना एक आधुनिक चेतना सम्पन्न जागरुक

नारी है। वह किसी पुरुष से नहीं डरती है किन्तु वह अहिंसा में आस्था रखती है। इसलिए अपने ग्राहकों द्वारा दी जाने वाली हर प्रकार की यातना यहाँ तक की शारीरिक यातना भी सहन कर लेती है और प्रतिवाद में उफ तक नहीं करती। इतना सब कुछ वह अपने सम्पर्क में आने वाले पुरुषों को कुंठामुक्त करने के लिए करती है। यह अहिंसा जैनेन्द्र जी की अहिंसा का ही प्रतिरूप है जो आत्मपीडा बन जाती है ।

रंजना को जैनेन्द्र जी ने आदिशक्ति के प्रतिरूप के रूप में प्रस्तुत किया है । उसके माध्यम से जैनेन्द्र जी ने नारी की शक्ति की महता का प्रस्तुतीकरण किया है कि नारी प्रेम, ममता की प्रतीक है। अपने प्रेम के बल पर वही संसार को युद्ध की विभीषिका से बचा सकती है । प्रेम न तो बुद्धि का ही दास हो सकता है और न व्यवस्थाओं का बंदी। वह तो द्वन्दभाव से मुक्त आकाश का अवगाहन करने वाला पक्षी है। बंद होकर वह उड़ान नहीं ले सकता, घुमता फिरता है। किसी एक डाली पर बैठे रहना उसका स्वभाव नहीं जो मुक्त भाव से कलरव करना ही उसका सहज प्राकृतिक धर्म है। जैनेन्द्र नारी में ऐसे ही प्रेम का उत्सर्ग देखना चाहते है ।

'अनन्तर' उपन्यास में जब प्रसाद के आबू जाने की बात आती है तो वह उनके खान–पान को लेकर चिंतित हो जाती है। वह उन्हें अकेले जाने देना नहीं चाहती, परन्तु रामेश्वरी का प्रसाद के साथ आबू जाना न हो पाया। वह परिवार के साथ नैनीताल जा रही थी, अपरा प्रसाद के साथ उनकी देखभाल के लिए जाती है। रामेश्वरी को अपने पति पर इतना विश्वास है कि वह एक पराई स्त्री के साथ यात्रा करने पर भी उसे कोई ऐतराज नहीं है और न ही उसके मन में ईर्ष्या उत्पन्न होती है। रामेश्वरी तथा प्रसाद द्वारा जैनेन्द्र जी ने यह प्रदर्शित किया है कि जीवन की तमाम परेशानियों के बावजूद अच्छा सुख सफल दाम्पत्य में ही निहित है। 'चारु' (अनन्तर) एक सामान्य स्त्री है। एक आदर्श भारतीय की भाँति वह पति की पूरक नहीं बन पाती। उसका पति आदित्य अपरा के प्रति आकर्षित होता है । एक पराई स्त्री को अपने पति के सानिध्य में देखकर चारु शंकाग्रस्त और चिंतित हो जाती है। अपरा से उसकी यह दशा छिपी नहीं रहती। अपरा और आदित्य का आकर्षण चारु के साथ–साथ रामेश्वरी के लिए भी चिंता का विषय बन जाता है। अनंत की नायिका अपराजिता आठ वर्षों तक विदेश में अपने पति के साथ रही है, फिर पति से तलाक लेकर आत्मिक शान्ति की तलाश में भारत आयी है। विदेश में उसने पश्चिम की स्वच्छन्दता को भरपूर भोगा है और उससे उबकर भारतीय मर्यादाओं की और झुक चली है।

जैनेन्द्र के अनेक उपन्यासों में एक जीवन शक्ति से भरपूर, चुनौती देने वाली पुरुष को अपने नारीत्व से, अभिनव और मनोहारी भंगिमाओं से विचलित करने वाली महिला होती है। 'अनंत' में यह अपरा के रूप में आई है। अपरा जीवन के प्रचुर अनुभव से सम्पनं महिला है उदार, ध्वंध और मुक्त।

शोधार्थी – शिल्पा बहन के. मकवाणा
शोध निर्देशक–डॉ. भगवान सिंह जे. सोलंकी
विभाग – हिन्दी
श्री भीखाभाई पटेल इंस्टीट्यूट ऑफ पी.जी. स्टडीज एण्ड रिसर्च इन ह्यूमेनेटिज, आणंद (गुजरात)

संदर्भ ग्रंथ :

1. विवर्त 1953 पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली
2. व्यतीत 1953 पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली
3. जयवर्धन 1956 पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली
4. मुक्तिबोध 1965 पूर्वादय प्रकाशन, दिल्ली
5. अनन्तर 1968 पूर्वादय प्रकाशन, दिल्ली
6. अनामस्वामी 1974 पूर्वादय प्रकाशन, दिल्ली

1. 'जैनेन्द्रकुमार चिन्तन और सृजन मधुरिमा' कोहली पराग प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण, 1982
2. 'जैनेन्द्र और उनका साहित्य' डॉ. राजेन्द्रमोहन भटनागर भारतीय निकेतन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण, 1989
3. 'जैनेन्द्र के उपन्यासों में नारी पात्र' डॉ. सावित्री मठपाल मंगल प्रकाशन, जयपुर प्रथम संस्करण
4. 'जैनेन्द्र के कथा साहित्य में चित्रित सामाजिक समस्याएँ' डॉ.सुरेश गायकवाड़ साहित्य रत्नाकर, कानपुर प्रथम, संस्करण, 1981
5. जैनेन्द्र के उपन्यासों की विवेचना डॉ. विजय कुल श्रेष्ठ पूर्वोदय प्रकाशन, प्रथम संस्करण, १९७६

कविताएँ/गीत/ग़ज़ल

आम्बेडकर तुम्हें कोटिशः नमन

✍ कुसुम वियोगी

आंबेडकर,
एक व्यक्ति थे
विचार बन गये !
एक फूल थे
करोड़ो गले का
हार बन गये !
आंबेडकर
उत्पीड़न की आग थे
गांधी को जीवन दे
करूणा के समंदर हो गये !
वाल्टियर से योध्दा
मार्टिन लूथर से पुरोधा
नेलशन मंडेला की आस
अमर्त्य सेन की प्यास
अबला रही,
महिलाओं का पूर्ण विश्वास
आधुनिक युग का इतिहास !
तुम !
सब कुछ सचमुच
क्या–क्या नहीं थे .... मेरे प्रज्ञा सूर्य !
हम यूं ही तो
आंदोलित नहीं होते
तेरे छोड़े कारवां को आगे ले जाने को !
अब तुम,
बूंद से व्यक्ति
व्यक्ति से विचार
विचार से वैश्विक आंदोलन
बन चुके हो ! प्रज्ञा सूर्य.....
अब तुम !
एक फूल नहीं, करोड़ों–करोड़
गले का हार बन चुके हो !
हम भारत के लोगों की ओर से
तुम्हें कोटिशः नमन ...,मेरे प्रज्ञा सूर्य !
14 अप्रैल 2020

1/4334–ए, रामनगर विस्तार
शाहदरा, दिल्ली–32

✍ डॉ. देवेन्द्र दीपक की दो कविताएँ :–

1. कविता मेरे लिये

मेरे लिए कविता
कबीरदास का कर्घा है

रविदास की कठौती
सेन का उस्तरा
और नामदेव की सुई है
मेरे लिए कविता।

पसीने की गंध
मेरी कविता का सौन्दर्यशास्त्र है

उत्पीड़न का बखान
मेरी कविता का धर्मशास्त्र है

अन्त्योदय से सर्वोदय तक फैला
मेरी कविता का समाजशास्त्र है।

2. मेरी आग

मेरी आग मेरी अपनी है

मेरी आग इसलिए नहीं
कोई दूसरा
इस आग पर अपनी
रोटियाँ सेंके।

मेरी आग मेरी अपनी है
मेरी आग इसलिए नहीं
कोई दूसरा
इसे अपनी पूँजी समझे
और अपना धंधा चलाए।

मेरी आग
मेरी रोटी
पतली हो या मोटी

डी–15, शालीमार गार्डन, कोलार रोड
भोपाल–462042 (म.प्र.)

कब बैठोगे कुर्सी पर

जितेन्द्र कुमार

सदियों से
तुमने बनाई कुर्सी
बैठने वाला कोई और

उगाया खेतों में अन्न
खाने वाला कोई और
बुने वस्त्र
पहनने वाला कोई और
बनाये घर
रहने वाला कोई और।

कब तक रहोगे ऐसे
बेबस लाचार?
अनधिकार?
कब तक छलेगा
वर्ण–धर्म का छलावा?
कब फूटेगा
तुम्हारे हृदय का लावा
ज्वालामुखी बनकर?
कब खड़े होगे
तन कर?
तोड़ कर गुलामी की बेड़ी
कब बैठोगे
कुर्सी पर?

चिलबिली दान चिलबिली
पोस्ट– बाजार गोसाईं
आजमगढ़–276127 (उ.प्र.)
मोबा. 8808489463

गीत

1. प्यार की सच्ची पहचान

डॉ. जय–जय राम आनंद

तुम्हारी मधुर अधर मुस्कान
प्यार की है सच्ची पहचान
छिपाकर आँचल में मुख शशि
छोड़ती मंद मंद मुस्कान
हृदय के आकर सारे भाव
अधर पर बन जाते अरमान
हृदय में उठता इकदम प्यार
कि मुझको तुमसे सच्चा प्यार
प्यार की भाषा ही है जटिल
न इससे कोई है अनजान

पूछते प्रश्न हुईं तुम मौन
अधरों पर छाई मुस्कान
बोलती नहीं अरे क्यों कहो
छलक आए उर के अरमान
हृदय में नयनों में तुम बसे
गणित नीरस कैसे दूँ ध्यान
अदा है पर सचमुच गुम नाम
लगाया यह मैंने अनुमान

बुझ मैं सका नहीं क्यों मौन
शिकायत बार–बार दी ठोंक
हंसी और फिर साधी चुप्पी
मुझको नहीं सकीं तुम टोंक
झलक आए आनन पर भाव
नहीं समझे तुम मेरा प्यार?
सचमुच हो रूखे दिलवाले
समझे नहीं मेरे अरमान

'प्रेम निकेतन' ई–1/70,
अशोका सोसायटी
अरेरा कॉलोनी, भोपाल–462016

✍ डॉ. दामोदर मोरे की दो ग़ज़लें :–

(1)

बाबा भीम के पुतले तोड़ने लगे हैं
अम्बेडकर कई जगह उगने लगे हैं

ढह रहे हैं अब जातिभेद के किले
जयभीम के सिपाही लड़ने लगे हैं

खोज रहे क्यों पुतले में अम्बेडकर?
बाबासाहेब विचारों में धधकने लगे हैं

हाथ में लहराते समता का नीला ध्वज
'जयभीम' के नारे अब गूंजने लगे हैं

सदियों से अंधेरे में ही थे तुम 'दीपंकर'
बहिष्कृत लोग रोशनी में चलने लगे है।

(2)

जुबां के ताले खोलने लगे हैं लोग
दमन के खिलाफ बोलने लगे हैं लोग

कब तक सहेगा पसीना यह शोषण?
जुल्मों सितम से खौलने लगे हैं लोग

अपराध इतना ही है कि हमने हक मांगा
लड़ने वालों को ही छलने लगे हैं लोग

यश के शिखर पर भरी उड़ान हमने
कामयाबी देख के जलने लगे हैं लोग

'दीपंकर' तू बढ़ा दे दोस्ती का हाथ
मित्रता की महक से मिलने लगे हैं लोग।

104, टॉवर–ए, मैटो रेसीडेंसी, मैटो जंक्शन मौल
नेतिवली कल्याण (पूर्व)–421306 (महाराष्ट्र)
मोबा. 9867330533

लघुकथाएँ

गुरु

✍ **प्रवीण राही**

पुरानी दिल्ली में लाल किले रोड की एक तरफ जूते का बड़ा शोरूम खुला और दूसरी तरफ रोड पर एक बुजुर्ग चलती फिरती–सी किताबों की दुकान सजा रहे थे। बेडशीट को बिछाकर उस पर गीता, कुरान, बाइबल ....आरती, पूजा मंत्रों की छोटी–छोटी पुस्तकें, प्रेमचंद्र की कहानियां, चेतन भगत, रॉबिन शर्मा, शेक्सपियर .....आदि की किताबें उन्होंने सजाई। पर अचरज की बात तो यह है की आज जब हर दिन की तरह एक दूसरे से शर्माए लिपटी किताबों ने जूतों को उन पर हंसते हुए नहीं देखा .....बल्कि वो श्रद्धापूर्वक सर झुका कर नमन कर रहे थे। तो फिर किताबों ने एक दूसरे से पूछा कि आज इन घमंडी जूतों में इतना बदलाव कैसे आ गया, आज ये अचानक हमारे सामने ऐसे झुक रहे हैं जैसे हमें अपना गुरु समझते हो। तभी उनमें से एक किताब 'हाउ टू सेल रिटन बाय प्रवीण राही' ने बाकी किताबों को कहा 'कल इस जूते के शो रूम का मालिक हमारे बाबूजी के पास आया था। और बाबू जी से कहा कि हमारी दुकान की बिक्री नहीं चल रही है। इस तरीके से जूतों को फेंकना पड़ जाएगा या कौड़ी के भाव बेचना पड़ जाएगा। आप कोई रास्ता बताएं। कोई किताब बताएं, जिस को पढ़कर मैं अपने तरीके में बदलाव ला सकूं और अपनी बिक्री बढ़ा सकूं।' फिर किताबों ने कहा अच्छा इसी वजह से आज सुबह से ही इनकी दुकान में ग्राहकों की भीड़ लगी हुई हैं। आज जूते खुद पर शर्मिंदा होकर अपनी इज्जत बचाने के लिए किताबों का आभार व्यक्त कर रहे थे।

एन.सी. 102, अंजु सिंह IRTS मनोकामना मंदिर के सामने
DRM, निकट रेलचौक ऑफिस के आगे,
मुरादाबाद–244001 (उ.प्र.)
मोबा. 9867330533

कदमों के निशान

डॉ. सुभाष नारायण भालेराव 'गोविन्द'

भारतवर्ष में कई वीर पुरुष हुये हैं और इनमें कई ऐसे भी वीर पुरुष होते हैं, जो अपने कदमों के निशान बनाते हैं और जो व्यक्ति असंभव कार्य को पूरा कर लेता है। वही व्यक्ति राष्ट्र पुरुष बनता है लेकिन ऐसा वही कर सकता है जिसको अपने जीवन से मोह है। इसीलिये हमें अपने जीवन से प्रेम करना सीखना चाहिये। तभी हमारा जीवन सफल माना जायेगा, हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि दस्तक तुम्हें भविष्य के दरवाजे पर तुम्हें होती हैं। अपने कदमों की आहट से इतिहास भी नया बनाना है। हमारे देश में ऐसे अनेक महापुरुष हुये हैं, जिन्होंने किसी दूसरे भू अनुसरण नहीं किया है, अपितु अपना मार्ग स्वयं ही बनाया। इसलिये मैं बच्चों को परामर्श देता हूँ कि बड़ों का अनुसरण नहीं उनका नेतृत्व करो क्योंकि अनुशरण करने वाला व्यक्ति कभी भी इतिहास पुरुष नहीं बनता, बड़े बुजुर्ग कहते हैं कि जो व्यक्ति जीवन में शीर्ष स्थान पाना चाहता है वे अपना मार्ग स्वयं बनाते हैं।

इसीलिये कहा गया है कि महापुरुष के अपने कदमों के निशान स्वयं बनाते हैं। इसीलिये हर शख्स को अपना मार्ग स्वयं ही बनाना पड़ता है। नदी जब हिमालय से चलती है तो वह स्वयं अपना मार्ग बनाती चलती है। इसीलिये मनुष्य स्वयं अपना कर्म और दायित्व स्वयं निर्धारित करना चाहिये और उसी पर चलना चाहिये और यही वास्तविक जीने की कला है। हमें जीवन का संरक्षण और विकास खुद ही करना होगा। आज इस देश को ऐसे बच्चों की आवश्यकता है। जो अपने कार्यों, विचारों और संस्कारों से समाज का नेतृत्व कर सके ऐसे व्यक्ति समाज में तभी पैदा होंगे जब शुरू से हम अपने बच्चों को जीवन से प्यार सिखाये। जीवन में हताश निराश और दुःखी व्यक्ति है, जीवन में सफलता प्राप्त नहीं करता, हमेशा प्रसन्न रहने वाला व्यक्ति ही जीवन में सफलता प्राप्त करता है जो लोग हिमालय का शिखर चढ़ते हैं और समुद्र की गहराई नापते हैं। आकाश की ओर उड़ान भरकर चान्दतारों की यात्रा करते हैं वे लोग भी मनुष्य ही हैं। लेकिन वे भी अपने जीवन को प्यार करते हैं तथा वे इसीलिये बड़े काम करा करते हैं। आज भी समाज में ऐसे ही लोगों की आवश्यकता है जो इतिहास बना सके।

'अवन्तिका' ए–38, न्यू नेहरू कॉलोनी
ठाठीपुर, मुरार, ग्वालियर–474011 (म.प्र.)
मोबा. 8989598860

अंतर

रत्नकुमार सांभरिया

घोड़े की पीठ पर दिन–भर पड़े चाबुक नील बनकर उभर आए थे। रोएँ–रोएँ लहू चुहचुहा रहा था। टीस के मारे वह बार–बार पैर पटकता, गर्दन झटकता था। पीठ के असहनीय दर्द को आँसुओं में बहा देना चाहता था। भूख से कुलबुलाती अंतड़ियों ने उसे चारे में थूथन गड़ाने को विवश कर दिया।

दर्द से गीली हो गयी घोड़े की आँखें एकाएक अपने मालिक की ओर घूमीं। वह थान के पास चारपाई डाले बैठा अपनी हथेली पर मेहंदी लगा रहा था। घोड़े का मन व्यथित हो गया। आँखें डबडबा आयीं। गर्दन हिलायी और अश्रुकण नीचे झटक दिये। चारा छोड़ दिया। वह दो टापें आगे बढ़ा।

दिन भर चली चाबुकों से मालिक की हथेली छिल गयी थी। फफोले उठ रहे थे। चाबुक से आहत मालिक की हथेली को घोड़ा अपनी नर्म–नर्म जीभ से सहलाने लगा था। दर्द करते फफोलों को राहत मिलेगी।

भाड़ावास हाउस, सी–137, महेश नगर
जयपुर–302015 (राज.)
मोबा. 9636053497

शिक्षा और संस्कार

डॉ. मालती बसंत

सुरेश और रमेश कक्षा में मास्टरजी के सामने ही झगड़ने लगे, सुरेश गाली–गलौच पर उतर आया।

''सभ्यता तो जरा भी नहीं सीखी। माँ–बाप ने तुझे यही संस्कार दिये हैं क्या? कहते हुए मास्टरजी ने छड़ी से सुरेश की खूब धुनाई कर दी।

स्कूल से छुट्टी होते ही सुरेश ने घर पहुंचकर बस्ता एक तरफ पटका और बिना हाथ–मुँह धोये ही खाने के लिये बैठ गया।

''ये तेरे लच्छन कैसे होते जा रहे है? स्कूल में मास्टरजी ने तुझे यही शिक्षा दी है क्या?'' माँ ने गाल पर दो–चार चांटे रसीद कर दिये।

वह रोता–बिलखता भूखा–प्यासा ही घर से निकल गया। आज दिन में दो बार पिटाई के कारण उसका दिल बड़ा दुःखी था।

वह अपने विचारों में खोया न जाने कब नदी की तरफ निकल गया। नदी किनारे बड़ी भारी भीड़ जमा थी। उत्सुकतावश वह भी पहुंचा तो, उसने देखा एक बच्चा पानी में डूब रहा है, पर किसी की हिम्मत नहीं हो रही थी कि बच्चे को पानी में से निकाल लें। सुरेश ने बिना एक पल देर किये पानी में छलांग लगा दी और उस बच्चे को पानी से बाहर निकाल लाया। वहाँ उपस्थित सब लोग सुरेश के साहस की प्रशंसा करने लगे और कुछ लोग सुरेश के साथ उसके घर तक पहुंचाने भी आये।

माँ ने जैसे ही सुरेश की प्रशंसा सुनी तो उन्होंने सुरेश को गले से लगा लिया और बोली–''मेरा बेटा साहसी क्यों न होगा? संस्कार तो उसे इसी घर से मिले है।'' दूसरे दिन सुरेश स्कूल पहुंचा तो उसके साहस की कीर्ति स्कूल तक पहुंच चुकी थी, मास्टरजी ने उसकी पीठ ठोंकते हुए कहा ''शाब्बास, यह हमारी शिक्षा का ही तो फल है।''

एम–241, गौतम नगर, चेतक ब्रिज के पास
भोपाल (म.प्र.)
मोबा. 9981775190

दलित आंदोलन की सशक्त अभिव्यक्ति : 'लालबत्ती'

डॉ. धीरजभाई वणकर

डॉ. कुसुम वियोगी दलित साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर है। आप वर्तमान में सदस्य, हिन्दी अकादमी (दिल्ली) कला, संस्कृति एवं भाषा विभाग राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली सरकार में हो। अनेकों पुरस्कारों से आपको सम्मानित किया गया है। आपकी रचनाएँ देश की कई युनिवर्सिटियों में पढ़ाई जा रही है। 'लालबत्ती' (आंदोलन की दलित कविताएँ) डॉ. कुसुम वियोगी का 2019 में प्रकाशित महत्वपूर्ण कविता संग्रह है। संग्रह की सभी कविताएँ अत्यंत संवेदनशील, वर्तमान यथार्थ का आईना है। कवि अन्याय एवं क्रूरता को चुनौती देते है। दलित साहित्य 'वाह' का नहीं पर 'आह' का साहित्य है। सदियों से उपेक्षित, पशु से भी बदतर जीवन जीने को मजबूर दलित की व्यथा, वेदना का हृदय विदारक चित्रण दलित कविता में हुआ है। वैसे भी दलित साहित्य आनंद के लिए नहीं बल्कि परिवर्तन के लिए लिखा गया साहित्य है। वस्तुतः सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं मानसिक शोषण के विरुद्ध संघर्ष करने का आह्वान इसका उद्देश्य है। डॉ. कुसुम वियोगी दलित समाज की सदियों से पीड़ित, शोषित, दमित आवाज को मुखरता से उठाने के लिये प्रतिबद्ध है। 'लालबत्ती' कविता संग्रह की कविताओं में विषय की दृष्टि से देखें तो धर्म, राजनीति, जातिगत भेदभाव, अत्याचार, पूंजीवाद, आदिवासी उत्पीड़न, बहुजनों, राष्ट्रवाद, भेड़िया, गोरखधंधा, वामपंथी, भारतीय एकता को खण्डित करती हिंसा आदि पर बेबाकी से कवि ने अपनी कलम चलाई है। दलित साहित्यकार मनुष्य की स्वतंत्रता, समता एवं बंधुत्व भावना को सर्वोपरि मानता है। वह मानवाधिकार की बात उठाता है तथा समाज में व्याप्त उन बुराईयों को समाप्त करने का प्रयास करता है।

दलित साहित्य बुद्ध एवं अम्बेडकरी विचारधारा पर आधारित है। वंचितों के मसीहा बाबासाहब ने जीवन जीने के अधिकार दिलावाये इतना ही बहुजनों में ऊर्जा भरने का सराहनीय कदम भी उठाया था। कुसुम वियोगी भी अम्बेडकरी विचारधारा से ओतप्रोत है। संग्रह की प्रथम कविता 'मेरे शब्द' ध्यानाकर्षक है। मुख्यधारा के रचनाकार अपनी ही बात लिखते रहे, अपनी मानसिकता के मुताबिक। कवि ने कलम उठाई है परिवर्तन के लिये बुद्ध सी करुणा एवं मैत्री को विस्तार देने। बुद्ध ने शांति, करुणा की राह दिखायी थी। इस राह पर चलेंगे तो पुनः शान्ति स्थापित हो सकती है। कवि कलम हित के लिये चलाने की बात करते नहीं की हमारी संस्कृति लहुलूहान हो जाए!। परम्परित कवियों से अलग बात करने के लिए वे लिखते है–मेरे, शब्द/इतने सजीले बनो/जो, कर सके बुद्ध की करुणा, मैत्री का विस्तार/और, करा सके/सभ्यता का बोध/उन, जात्याभिमानी, अबोधों को! (पृ. 3)

आजादी के सात दशकों के बाद भी दलित अपनी अस्मिता की लड़ाई लड़ रहे है। आये दिन दलित उत्पीड़न, हिकारत की घटनाएँ अखबारों एवं मीडिया में देखते–पढ़ते है। हम कितने भी क्यों न मॉर्डन हो जाये, पर हमारे प्रति उनका नजरिया नहीं बदला। हमारी परछाई से भी उन्हें नफरत है। जाति इस कदर हावी है कि मरने के बाद श्मशान भी अलग। ब्राह्मणवादी विचारधारा ने दलितों को खूब दबाकर रखा, ऊपर उठने का अवसर ही नहीं दिया। वे कतई नहीं चाहते कि हम उनकी बराबरी में आयें। जातिगत भेदभाव का खात्मा कवि चाहते है। सभी मनुष्य बराबर है। कोई शोषण नहीं होना चाहिए। हम भेदभाव रहित समाज चाहते है। हम समाज में किसी के साथ प्रचलित भेदभाव के कारण अलगाव नहीं चाहते है। आज भी समाज में ऊँच–नीच, छुआछूत पाखण्ड, शोषण, अत्याचार बदस्तूर जारी हैं। इसी व्यवस्था को आवाज देते हुए कुसुम वियोगीजी कहते हैं–

जातिभेद की, गटर–गंगा/ऊपर से ही/बहती आ रही है/इस पर बांध तो बुद्ध ने ही बांधा/तुम अब भी, अपनी, अविधा के कारण/जातिभेद की/गटर गंगा में, गोते लगा रहे हो/आखिर क्यों? (पृ. 41)

कवि ब्राह्मणवादी जकड़नों को ललकारते हुए हाशिये के समाज के अपनों से कहते है डरो नहीं, लड़ो, अत्याचार को अलविदा करने एक बानगी देखिए–''मेरे, शोषित वंचित साथियों!/तुम्हारे पास है ही क्या? जो, मौन साधे, पड़े हो!/आखिर, ये भय तो/तुम्हें, त्यागना ही पड़ेगा...मनुष्य को/अपनी अस्मितार्थ रक्षा करने का, कानूनन अधिकार भी तो है। (पृ. 51, 53)

तथाकथित धर्मशास्त्रों ने बहुजनों को जकड़ रखा। इन शास्त्रों ने मानव–मानव के बीच दीवारें खड़ी की हैं। धर्म के ठेकेदार धर्म के नाम पर अपनी खिचड़ी पकाते रहे। धर्मग्रन्थों ने पाखण्ड को जन्म दिया और शूद्रों का जीवन नारकीय बना दिया था। जैसाकि प्रकृति का नियम है, ब्राह्मण धर्म की क्रिया पर प्रतिक्रिया तो होनी ही थी। लोगों में असंतोष फैलने लगा और क्रान्ति का बिगुल फूककर–ज्योतिबा फुले, सावित्रीबाई फुले, ई.वी. रामास्वामी पेरियार, शाहूजी महाराज और डॉ. अम्बेडकर ने दलितों एवं महिलाओं की शिक्षा व समतामूलक समाज की स्थापना के लिये डटकर विरोध किया। आज राष्ट्र को खतरे में डालने का कार्य कुछ लोग कर रहे हैं। दलित रचनाकार धर्म, भाग्य–भगवान पुनर्जन्म को नकारता है। मानवता को स्थापित करना मुख्य स्वर है। धर्म के नाम कई जगह गोरखधंधा चल रहा है, अंधभक्तों से पैसे लूटे जा रहे है यह सर्वविदित है। सबसे बड़ा धर्म मानव धर्म है। बड़े–बड़े उपदेश देना आसान है, परन्तु इन पर चलते है कितने लोग। यह चिन्ता–चिंतन का मुद्दा है। कवि ने इस बात को बेबाकी के साथ उजागर की है। कवि धर्मशास्त्रों के विधि विधान बदलने के लिए ललकारते हुए लिखते है–

''तुम्हें, बदलने ही होंगे/अपने/धर्मशास्त्रों के/विधि–विधान! अपमानित/शब्दों की वर्णमाला को/करना होगा तिरोहित/आग के हवाले मानवता

के नाम पर!/और, हाँ/अब, जो भी स्वप्न/देख रहे हो, समता की जमीन पर/उगाने को/समरसता का वृक्ष! वो, जातियता के रहते/लोकतंत्र में/कभी नहीं/पनप सकता। (पृ. 21)

भगवाधारी साधुओं की पाप लीला से बचकर रहना आवश्यक है। छोटे–छोटे बालमानस पे धर्म के नाम पर कट्टरता थोप देना ठीक नहीं है। आश्रमों में कई युवतियों का कौमार्य भंग होता है, उन्हें फंसाया जाता है। इसे बखूबी बेनकाब करते हुए कवि कहते है–

जानते हो, इन/भगवा वस्त्रधारियों को?/जो, धर्म–कर्म के नाम पर चला रहे है/अपना–अपना/गोरखधंधा!/बनाते हैं निशाना/मासूम माँ–बहन बेटियों को!/अरे! भाई/अब, तो जानो, इनके/घुघंरू घुमेर चक्र को। (गोरखधंधा, पृ. 48)

अब दलित, आदिवासी असलियत जान चुके है। ऐसे गोरखधंधा चलानेवाले का भण्डा भोड़ने के लिए मुँह खोल रहे हैं।

पिछले कुछ सालों से हमारे देश में घिनौनी राजनीति देखने को मिल रही है। गांधी के सपनों का भारत सत्तालोलुप हो रहा है। यहाँ नेता को सिर्फ कुर्सी की ही पड़ी है, आम आदमी की नहीं। लोकतंत्र का अर्थ शायद आज के नेता के लिए बदल गया है। जनता के पैसों से अपनी अलमारी भर रहे हैं। भ्रष्टाचार ने तो हद कर दी है। गांधी का मुखौटा धारी नेता देश को लूट रहे हैं। अच्छे लोगों की जगह दबंग लोग सत्ता में आ जाते हैं। करोड़ों में नेता बिक रहे हैं। यह आज के हालात है। कवि की 'कोबरा!' कविता में इस बात की पुष्टि मिलती है–कल तक/जो, अखबार में छपते थे! आज, वो, दरबार में/दिखते हैं। (पृ. 62)

संग्रह की 'लालबत्ती' कविता अपने आप में महत्वपूर्ण कविता है। चुनाव के समय के यथार्थ को इसमें उकेरा गया है। हमारे देश में जाति, धर्म सम्प्रदाय के नाम पर चुनाव लड़ा जाता है। राम के नाम पर, गाय के नाम पर वोट मांगे जाते है। अक्सर झूठे वादे किये जाते हैं, कहीं–कहीं गरीब बस्ती में नोट के बल पर वोट खरीदे जाते है, कुछ नेता तो गिरगिट सा रंग दिखाने लगते है। इस कटु सत्य पर करारा प्रहार करते है कुसुम वियोगी जी लिखते है–भेड़िये, इन्सानी भाषा में/निकालेंगे/नयी–नयी आवाजें! लुभाने को डालेंगे, हरा–भरा चारा/विकास के नाम पर! आदमी!/देखकर, प्रलोभन का चारा.../गणतंत्र चरमरा रहा हैं!/लोकशाही,/खून से लथपथ हो/राजपथ पर पड़ी कराह रही है!/लालबत्ती से/जगमगा रहे है!, विकास, हरीबत्ती के इंतजार में/भौंपू बजा रहा है!/हमारे लोकतंत्र का तिरंगा/लाल किले पर/फहरा रहा है! (पृ. 43, 44)

कवि कुसुम वियोगीजी की नजर इर्द–गिर्द घूम रही है। उनकी कलम यथार्थ को उकेरने में सफल रही हैं। हालांकि ये कविताएँ आंदोलन धर्मा है। भारतीय समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग आज भी रोटी, कपड़ा, मकान के लिये संघर्ष कर रहा है। वैसे भी दलित समाज का जीवन संघर्ष के लिए है ऐसा कहे तो गलत नहीं। ये समाज परिश्रम–पसीन की रोटी खाता है। युगों–युगों से शोषण के शिकार बने, ये दलित अब मुकाबला करने को तैयार हो गया है–घरों में रोशनी लाने के लिए अब चुप्पी तोड़ने लगे है। इन पंक्तियों में कवि का तेवर देखिये–जी, हाँ!/मैं, जूता पालिश करता हूँ!/मगर पण्डे–पुरोहितों–सा/परजीवी नहीं/ श्रमजीवी हूँ साहब!/मेरा फटा जूता/व्यवस्था के मुंह पर रसीदी टिकट–सा/छपता है/सच!/तब मैं तुम्हारी/वर्ण व्यवस्था का/पांच नम्बर का/फटा जूता हूँ/जो/तुम्हारी दृष्टि में/आज तक, अछूता हूँ (पृ. 70)

शिक्षण संस्थानों पर वर्चस्ववादियों का कब्जा है। जो दलित–पिछड़ी जाति के छात्रों के साथ खिलवाड़ करते है। आधुनिक द्रोणाचार्य भेदभावपूर्ण रवैया अपनाते रहे हैं। इसका परिणाम हुआ कि रोहित वेमुला जैसा विद्यार्थी आत्महत्या के लिये विवश हो गया। कवि ने रोहित वेमुला की आत्महत्या के सामने सवाल खड़ा किया कि सच्चा अम्बेडकरवादी कभी मरता नहीं,

लड़ता। इस तरह आत्महत्या कर लेना कायरता की निशानी है। युवाओं को सन्देश देते हुए कहते है कि रोहित वेमुला की तरह पीछे नहीं हटना बल्कि लड़ना–भिड़ना चाहिए, तभी अधिकार मिलेगा। 'एक खरीखोटी कविता वेमुला के नाम' में कवि आह्वान करते हुए कहते है–'अगर तूं, सच में/अम्बेडकरवादी होता/तो, आत्महत्या कभी नहीं करता!/उन, दैत्य– दानवों से लड़ता, भिड़ता, झगड़ता/संविधान के दायरे में!/कोई तो, खड़ा होता/तेरे आगे–पीछे! (पृ. 58)

संग्रह की 'वामपंथी' कविता में वामपंथी की असलियत पर प्रहार किया गया है। अम्बेडकर ने दलितों की चुप्पी तोड़ने का कार्य किया। अब हाशिया का बोलने लगा, काले कारनामें खोलने लगा है इस बात की 'खोमोशी' में रेखांकित किया गया है–'खामोश/ चट्टान के नीचे भी/कुछ खदकता है ज्वालामुखी–सा /फटने को!' (पृ. 64)

'संस्थापक' (दलेस) नामक कविता में कवि ने स्पष्ट कहा है कि 'दलित लेखक संघ के वे संस्थापक है। कई संघर्ष के बाद ऊँचाई पर पहुँचाया किंतु खेद इस बात का है कि आज कुछ रंगीले सियार। भेड़िये के घुस जाने के कारण बुनियादी लोगों को नजरअंदाज कर रहे हैं। भूमण्डलीकरण ने दलितों–आदिवासियों को और पीछे धकेल दिया है। असल में यह छलावा है। सरकारें, गाय–मंदिर, धर्म युद्ध, कुछ तो सीख!, पत्थर उठा!, सुरताल, शब्द में रोशनी। सीटियाँ, भावना। सोच बदलो। हिस्सा बन, आदमी जीवित पर मुर्दा है। 'जूता', जुहार मालिक। आदि कविताओं में दमित–शोषित की आवाज को मुखरता के साथ उठाया गया है, साथ ही विषमतामूलक व्यवस्था की पोल खोलकर सीधे–सीधे चुनौती देने का आह्वान भी करती है।

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
जी.एल.एस. कॉलेज फॉर गर्ल्स, दीनबाई टॉवर केसामने,
लाल दरवाजा – अहमदाबाद (गुजरात) पिन. – 380001
मो. 09638437011

बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर को भारत की ग्रामीण व्यवस्था की बेहद जानकारी थी। उन्हें पथा था कि गुजरात में पाटीदार/पटेल, महाराष्ट्र में मराठे, कर्नाटक में लिंगायत वोककलिवा, आन्ध्र– तेलंगाना में रेड्डी आदि जातियाँ दबंग हैं। उत्तरप्रदेश–बिहार के हिस्सों में जाटों–राजपूतों का प्रभुत्व है। देश के विभिन्न हिस्सों की दबंग जातियाँ अनुसूचित जातियों को संवैधानिक तौर पर प्राप्त नागरिक अधिकारों की सुविधा का उपयोग करने में तमाम बाधाएँ उत्पन्न करेंगी। ऐसी स्थिति में स्थानीय निकाय और राज्यों की सत्ता अभी काफी दिनों तक इन दबंग जातियों के हाथ में रहेगी। राज्यों की प्रशासनिक मशीन पर इन्हीं का कब्जा रहेगा। इसलिये उनके दैनंदिनी जीवन में होने वाले हस्तक्षेप से मुक्ति का मार्ग केन्द्रिय सत्ता की मजबूती है। देश में दलितों के असुरक्षा का भाव ही केन्द्रीयकरण की बढ़ती प्रवृत्ति का कारण है।

विपक्षी दल में रहते हुए राज्यसभा में डॉ. अम्बेडकर ने सुझाव दिया कि केन्द्रीय गृह मंत्रालय अनुसूचित जातियों के मूलभूत अधिकारों के प्रवर्तन की जिम्मेदारी ले। राज्य सरकारें यह काम नहीं कर सकती। पुलिस भी यह काम नहीं कर सकती क्योंकि उसे इन कामों में रुचि नहीं है। अनुसूचित जातियाँ स्वयं अपनी रक्षा नहीं कर सकती। क्योंकि उनमें इतना दम नहीं है। इसलिये गृहमंत्री एक सच्चे राजनीतिज्ञ की तरह इस काम को अपने हाथ में लें। जब तक गृह मंत्रालय स्वयं अथवा उसके अधीन कोई विभाग इस काम को अपने हाथ में नहीं लेगा यह महान लक्ष्य प्राप्त नहीं हो सकता।

डॉ. तारा जी

नवम्बर का अंक के कुछ अंश पढे। आपका संपादकीय धर्मनिरपेक्षता को सूत्र रूप में प्रस्तुत करता है। अंतिम कवर पर आपकी छोटी सी कविता लोकधुन में बड़ी अच्छी लगी। वाल्मीकिजी के बटोहीजी को लिखे पत्र को पढ़कर अच्छा लगा। डॉ. सत्यप्रेमी के भी ऐसे कुछ पत्र हों तो उन्हें भी छापिए। एक छोटे से बाक्स में छपे बाबासाहब के विचार मार्गदर्शक है। जात पात के उपर उठकर किसान और मजदूर संगठन काम करें तो अच्छा काम हो सकता है। शेष शुभ

डॉ. देवेन्द्र दीपक, भोपाल

नारीवाद का अंतर्विरोध और परिवर्तन

पुस्तक समीक्षा

समीक्षक – सुश्री संदीपा दीक्षित

वरिष्ठ मार्क्सवादी–आम्बेडकरवादी चिंतक और आलोचक आर. डी. आनंद लेखक, कवि, एवं आलोचक होने के साथ–साथ एक नेकदिल इंसान भी हैं। आनंद सर मूलतः मार्क्सवादी हैं, साथ ही साथ वे आम्बेडकरवादी भी हैं। आनंद सर बहुत ही मृदुभाषी, बहुत ही सरल और सामान्य व्यक्ति हैं किन्तु बहुत ही विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न, उत्कृष्ट बुद्धिजीवी, तीक्ष्ण मनोवैज्ञानिक, विशुद्ध विज्ञान सम्मत, तर्कशील और अत्याधुनिक हैं। आनंद सर का कविता–संग्रह 'मेरे हमराह' परिकल्पना प्रकाशन, नई दिल्ली से 2019 में प्रकाशित हुआ है। इसके प्रकाशक श्री शिवानंद तिवारी हैं। उनकी कविता संग्रह 'मेरे हमराह' पढ़ा। प्रारम्भ में उन्होंने अपने संग्रह में प्रेम–कविताएँ लिखी हैं। उन्होंने प्राक्कथन में स्पष्ट कर दिया है कि उनकी प्रेम कविताएँ कल्पित प्रेयसी पर किशोरावस्था में लिखी गई कविताएँ है। उन कविताओं को आनंद सर ने 20 वर्ष की अवस्था में लिखा हैं। उनकी एक कविता ही है 'कल्पित प्रेयसी' जिसमें उन्होंने एक क्रान्तिकारी लड़की की कल्पना की है। अमूमन कवि स्त्रियों के आँख, कान, नाक, गाल, बाल, कमर की उपमा किसी अप्रतिम सौंदर्य से करता है लेकिन आनंद सर ने स्त्री के हर अंगों को क्रान्ति का प्रतीक और रूपक बनाया है। उस कविता की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत करती हूँ :

तुम मेरी कल्पित प्रेयसी हो
दिल कहता है, काश!
सचमुच तुम होतीं
दुश्मन तुम्हें देखकर थर्राता
तुम क्रान्ति की देवी कहलातीं
तुम सर्वहारा की नायिका बनतीं
तुम्हारे बाल हथियार की तरह खुलते
तुम्हारा आँचल परचम की तरह लहराता
तुम्हारी आँखों में बिजलियाँ कौंधतीं।
(मेरे हमराह, पेज 34)

आनंद सर नारीवादी स्त्रियों से कुछ अधिक कठोर होकर प्रश्न करते हैं लेकिन उनका प्रश्न अनुचित नहीं है। कोई भी स्त्री पुरुष से अलग कभी नहीं रह सकती है। जब स्त्री पुरुष से अलग नहीं रह सकती है तो उसको अलगाववाद में नारी का स्थान खोजना अनुचित है। आनंद सर की 'तुम्हारी संस्कृति स्त्री विरोधी है', 'उलझन सुलझी नहीं है', 'तुम क्या चाहती हो', 'सेक्सी इज ब्यूटीफुल', 'स्वच्छंदता', 'पुरुष प्रधान स्त्रियाँ', 'स्त्रियोचित', 'स्त्री विरोधाभास' और 'मूर्ख सुंदरियाँ' कविताओं में नारीवादी स्त्रियों के विचारों का द्वंद्व, रूप, राग, बनाव, श्रृंगार, सभ्यता, संस्कृति, वस्त्र और स्वच्छंदता पर अनेक वाजिब सवाल हैं जिस पर अलग से लिखा जाना जरूरी है। उनकी 'मेरी नन्हीं' कविता में स्त्री के बल्यापन से लेकर मृत्यु तक के जीवन संघर्ष की पूरी कथा है। यह एक अच्छी नैरेटिव कविता है। इस संग्रह में आनंद सर की अपनी बेटियों को भी क्रान्तिकारी स्त्री के रूप में ढालने की कोशिश दिखाई पड़ती है। वे अपनी पत्नी को भी पुरुष प्रधानता के विरुद्ध खड़े होने की सिफारिश करते हैं। आनंद सर स्त्री–पुरुष की समस्याओं को वर्चस्ववादी व्यवस्था की उपज मानते हैं। उनका कहना है कि मनुष्य के द्वारा मनुष्य का किसी भी तरह का शोषण–उत्पीड़न खत्म होना चाहिए लेकिन यह तब संभव है जब हम शोषण–मूलक व्यवस्था को खत्म करके सामूहिक उत्पादन की व्यवस्था लागू करें। आनंद सर कहते हैं कि जनता वहीं आकर गुमराह होती है जहाँ से उसे संघर्ष प्रारम्भ करना चाहिए। सभी

परम्परावाद विरोधी परिवर्तन के पक्षधरों को पूँजीवाद और सत्ता द्वारा गुमराह किए गए विषयों पर बहुत समझदारी और ईमानदारी से विमर्श कर वैचारिक एकता सुदृढ करना चाहिए। बिना चिंतन की एकरूपता के जनता असली शत्रु के विरुद्ध संगठित आंदोलन नहीं कर पाएँगी।

मार्क्सवादी दलित चिंतक आर. डी. आनंद सर के नारी सम्बन्धी कुछ विचार मैंने उनके फेसबुक से कलेक्ट किए हैं, जो मैं आप सभी के अवलोकनार्थ निम्नलिखित रूप से प्रस्तुत कर रही हूँ। वे लिखते है, आम स्त्री तो परम्परावादी है। उसे भाग्य, भगवान, तीज, त्योहार, गौरी, गणपति, जादू, टोना, नजर, भभूत, व्रत, एकादशी, करवाचौथ, भैयादूज, काली, ड्यूहार, संतोषी माई और दुर्गा माई से ही फुरसत नहीं है। बचीं थोड़ी वैचारिक बहस वाली लड़कियाँ और स्त्रियाँ। वे स्वयं कई खेमों में बंटी हैं–कोई प्रगतिशील चेतना वाली हैं, कोई जनवादी चेतना वाली हैं, कोई मार्क्सवादी हैं, कोई सवर्णवादी हैं, कोई दलितवादी हैं, कोई आम्बेडकरवादी हैं। ये सभी स्त्री के मुद्दों पर अलग–अलग हैं। बहुत सारी स्त्रियाँ बनाव, श्रृंगार, बिंदी, सिंदूर, काजल, लिपिस्टिक, क्रीम, पाउडर, नथ, झुलनी, झुमकी, करधन, पायल, पावजेब, हार, अंगूठी, लम्बे बाल, साड़ी, ब्लाउज इत्यादि को स्त्री गुलामी का प्रतीक और पुरुषों की दासता का एक खूबसूरत औजार समझती हैं। फिर भी, स्वयं यही नारीवादी स्त्रियाँ ही बड़े शौक से चार्मिंग स्त्री बनकर (एक तरह मार्केट की रंग–बिरंगी वस्तु बनकर) पुरुषों से कहती हैं कि स्त्रियों का इस तरह रहना अनुचित नहीं है बल्कि तुम्हारी (पुरुष की) नजरों मे अश्लीलता है। जहाँ स्त्री को अपने अनेक क्रियाकलापों और संस्कृति, हाव–भाव से पुरुषों को अपने साथ लाकर कन्विंस करना चाहिए था, वहीं अनाप–सनाप आरोप मढ़कर उन्हें अपनों से और अपने संघर्षों से दूर कर देती हैं तथा कालांतर में ढ़ेर सारी नारीवादी स्त्रियाँ उच्छृंखलता का शिकार हो कर स्वक्छन्द हो जाती हैं। (संदर्भ : स्त्री मुक्ति–संघर्ष कौन करेगा–आर. डी. आनंद, फेसबुक, 07.08.2020) आनंद सर अपनी कविता 'तुम्हारी संस्कृति स्त्री विरोधी है' में भी लिखते हैं, जो अवलोकनार्थ है :

और तुम्हारे अंदर की स्त्री कुढ़ती रहती है
खुली कमर और बैली चेन
स्त्री के किस अद्भुत संसार को आलोकित करते हैं
पुरुष तुम्हारी खुली नाभि को नभ सा अद्भुत मानता है
लेकिन तुम स्त्री स्वतंत्रता के नाम पर
अंग प्रदर्शन क्यों करना चाहती हो
तुम्हारे पेट और पीठ संस्कृति के नाम पर
हमेशा खुले रहते हैं
यह पुरुषों की चाल थी
लेकिन तुमने कभी नहीं सोचा
कि तुम्हारे आधे अंग खुले क्यों रहते हैं
चूड़ी, तरकी, झुमकी, नथ, बिंदिया, पायल, टीका, नेकलेस
सिंदूर, काजल, पाउडर, फाउंडेशन,
रूज, लाइनर, लाली, लिपिस्टिक
मेंहदी, आलता, मस्कारा, आई शैडो, आई लैशेज
तुम्हें कुछ खास बनाते हैं
ये तुम्हें सजात हैं
बताओ सखे!
ये फिर तुम्हें क्या बनाते हैं?
(मेरे हमराह, पेज 60)

मार्क्सवादी दलित चिंतक आर डी आनंद सर दलित साहित्य और दलित स्त्री के नाम पर अलग चिंतन करने वाली, अलग राय रखने वाली तथा तिहरे शोषण की बिगुल बजाने वाली सुशिक्षित स्त्रियों से भी सवाल करते है। यह सच है कि सवर्ण स्त्रियों, दलित स्त्रियों, मुस्लिम स्त्रियों, आदिवासी स्त्रियों, मूलनिवासी स्त्रियों, बौद्ध स्त्रियों, जैन स्त्रियों, सिख स्त्रियों और ईसाई स्त्रियों को पुरुष प्राधानता के विरुद्ध एक होकर

संघर्ष करने की जरूरत है लेकिन छोटे–छोटे निजी स्वार्थ व धार्मिक भ्रम में स्वयं को अलग कर के कमजोर बन जाती हैं। पुरुष के नाम पर चाहे सवर्ण पुरुष हों अथवा दलित–आदिवासी–मुस्लिम पुरुष, सभी स्त्रियों को अपने अधीन बनाए रखने और अपने अनुसार सभ्यता, संस्कृति और वेश–भूषा में रखना पसंद करते हैं। दुर्भाग्य से, दलित स्त्रियाँ जो ब्राह्मणवाद विरोध के नाम पर सवर्ण स्त्रियों से अब स्वयं भी दूरी बनाए रखना चाहती हैं, किसी भी तरह सवर्ण स्त्रियों से दलित स्त्रियों की सभ्यता अलग नहीं बन पाई है। एक स्त्री के नाम पर जितने भी दुख–दर्द, सभ्यता–संस्कृति, वेश–भूषा, अलंकार–आभूषण, साड़ी–ब्लाउज, लालन–पालन, गृह–कार्य, शौक–श्रृंगार, सजना–संवरना इत्यादि है, सब कुछ सवर्ण और दलित स्त्रियों में एक जैसा है। जो सारे अवगुण सवर्ण पुरुषों में हैं वही सारे अवगुण दलित पुरुषों में भी हैं। कोई भी दलित पुरुष दलित होने के नाते अपनी स्त्री को सवर्ण पुरुषों की अपेक्षा अधिक स्वतंत्र नहीं कर देता है और न स्वयं कहीं अधिक उदार बन जाता है। सवर्ण पुरुष और दलित पुरुष में जो पुरुष होने के नाते समानता है, वही समानता सवर्ण स्त्री और दलित स्त्री में भी है लेकिन दलित स्त्रियाँ तिहरे शोषण अर्थात जातिगत शोषण की मानसिकता के चलते अनेक मुद्दों पर जहाँ एक साथ मिलकर पुरुष प्रधानता क्या, अनेक सामाजिक और राजनैतिक मुद्दों पर लड़ना चाहिए, वहाँ जाति भेदभाव के चलते न सवर्ण स्त्रियाँ दलित स्त्रियों को अपना मानकर साथ लेना चाहती हैं और न दलित स्त्रियाँ ही सवर्ण स्त्रियों को अपने साथ लेती हैं। यहीं पर आनंद सर का दलित स्त्रियों से सवाल वाजिब हो जाता है। आइए देखते हैं उनकी कविता 'दलित स्त्रियाँ' का अंशः

तुम दलित स्त्री हो
पढ़ी–लिखी हो
ओह हो...पीएचडी भी हो
अच्छा! डिग्री कॉलेज में नहीं
यूनिवर्सिटी में रीडर हो
दलित स्त्रियों का तिहरा शोषण
तुम्हारी परिभाषा है–
पुरुष प्रधानता, पूँजीवाद और ब्राह्मणवाद
पुरुष प्रधानता ने श्रृंगार के नाम पर तुम्हें
गहनों से गुलाम बना रखा है,
बाजार ने तुम्हें सौंदर्य प्रसाधन से गुलाम बना रखा है
सिंदूर श्रृंगार नहीं पति परायणता है
पुरुष अधीनता है
जबकि तुम सिंदूर लगाती ही हो
तुम्हारे लंबे बाल पुरुष वर्चस्व हैं
यह अधिकार उसे सुलभ कराती हो
किचेन तुम्हारा समझौता है
स्त्री हीनता की पहचान है
पीठ–पेट खुले रखना
तुम्हारी दासता है
चूड़ी तुम्हारी दासता है,
सुंदरता के नाम पर
तुम्हारी खुली नाभि दासता है,
तुम इसका प्रतिकार नहीं कर सकती हो
भला आम दलित स्त्रियाँ कैसे करेंगी?
(मेरे हमराह, पेज 70–71)

मार्क्सवादी आम्बेडकरवादी चिंतक आर.डी. आनंद का मानना है, पुरुष अपने शरीर और अंगों–उपांगों को लेकर बिल्कुल संवेदनशील नहीं रहता है या ऐसी ही सामाजिक फितरत बन गई है किंतु स्त्री अंग को लेकर न सिर्फ पुरुष स्वयं स्त्रियाँ भी परवाह करती है, यहाँ तक कि स्त्रियाँ बॉयोलोजिकली भिन्न हैं और उनकी नीड बिल्कुल प्राकृतिक है, फिर भी इस तरह भिन्न देह के उनके खयालात जायज हैं किंतु शरीर को किसी लुभावने एसेट की तरह प्रयोग

पूँजीवादी कुसंस्कृति का शिकार होना है। अतः ऐसा लिखने का उद्देश्य दूषित पूँजीवादी बाजार का शिकार होने से लड़कियों को आगाह करना मात्र है। जब स्त्रियाँ पुरुष प्रधान समाज में रहती है इसलिए पुरुष प्रधानता के विरुद्ध संघर्ष करने की पहल और हिम्मत करनी ही पड़ेगी। जब तक पुरुष दृष्टिकोण परिवर्तित न कर लिया जाय, जब तक समाज का दृष्टिकोण न बदल लिया जाय, तब तक उसकी गंदी नजर से तो बचना ही उपाय है। मनुष्य को एक आचार संहिता में जीवन जीना अनिवार्य है। अब सवाल है हम किस आचार संहिता को मानें? अभी हम आचार संहिता निर्मित्ति की प्रक्रिया में हैं। संघर्ष ही एक मात्र वह तरीका है जो उस प्रक्रिया को भी पूर्ण कर सकता है। इसके गहरे अर्थ को आनंद सर की कविता लड़कियों के हाथ से समझना जरूरी है :

मैं यह बात अपनी बेटियों को समझा दूँगा
कि तुम जितनी ही स्वतंत्र बनोगी
गुलाम लोग तुम्हें उतनी ही कुलच्छनी कहेंगे
चिन्ता न करना
लोक, लाज, मर्यादा स्त्रियों के गहने नहीं हैं
ये पुरुष प्रधानता के मंत्र हैं
ये पुरुषों के विजय चिन्ह हैं
तुम जैविक रूप से अलग हो
और यह, तुम्हारी कमजोरी नहीं है
लेकिन, प्राइवेट प्रॉपर्टी कॉम्प्लेक्स ने
तुम्हें पुरुषों की निजी संपत्ति बना डाला है
पुरुषों ने तुम्हारे जैविकीय संरचना के साथ
खेलना शुरू कर दिया
तुम्हें कन्विंश कर दिया
तुमने गुलाम के रूप में
उसे असेट समझ लिया
और छिपा–पीछा कर दर्शनीय बनाया
और अंत में उसे
तुम्हारे इज्जत के साथ जोड़ दिया गया
तुम कमजोर हो गईं
एक तरह से तुम्हारे शरीर को ही
छुईमुई बना दिया गया
स्त्री इज्जत और बेइज्जती का पुतला बन गई
तुम्हारा देह तुम्हारी सभ्यता तुम्हारी संस्कृति
पुरुषों की दासी नहीं है
तुम्हारा शरीर उनके कपड़ों के मोहताज नहीं हैं।
(मेरे हमराह, पेज 73)

मुझे आनंद सर के ऐतिहासिक भौतिकवाद के संदर्भ में उत्पादन और श्रम के सम्बन्ध में बनने वाले रिश्तों पर निगाह टिकी तो समझ में आया कि आजादी आंदोलन के समय जब डॉ. आम्बेडकर ने भारतीय सामन्तों से कहा था कि तुम अपनी आजादी आंदोलन में यदि मुझे व मेरी कौम का साथ लेना चाहते हो, तो हमें ब्राह्मणवाद से पूर्ण मुक्त कर दो लेकिन इस देश के सामन्तों ने ऐसा नहीं किया। यहाँ यह चिंतन उचित है कि मैं तो तुम्हें दूसरों की गुलामी से आजाद करवाने के लिए तुम्हारे पक्ष में बलिदान देते हुए लड़ूँ और तुम हो कि आजाद होने के बाद मुझे गुलाम बनाए रखना चाहते हो, फिर मैं तुम्हारी स्वतंत्रता के लिए क्यों लड़ूँ? ठीक यही विचार इस कविता में देखने को मिला। एक दलित स्त्री अपने पति व पुरुष की स्वतंत्रता के लिए तो ब्राह्मणवाद से लड़ रही है लेकिन क्या ब्राह्मणवाद से स्वतंत्र होने के बाद दलित पुरूष दलित स्त्री को अपने पुरुष दासत्व से मुक्त कर देगा? यदि पुरुष यह प्रतिज्ञा करता है, तो वह हमें ब्राह्मणवाद की लड़ाई लड़ी जाने से पूर्व ही पुरुष दासत्व से मुक्त क्यों नहीं कर देता है। इस कविता में वह स्त्री इसी बात को तो उठाती है कि यदि तुम मुझे पुरुष प्रधानता से नहीं मुक्त करोगे, तो हम तुम्हारी आजादी के लिए ब्राह्मणवाद के विरुद्ध नहीं लड़ेंगे। यदि हम तुम्हारे गुलाम रहेंगे, तो तुम ब्राह्मणों के गुलाम रहो। तुम हमें आजाद करना नहीं चाहते हो, तो हम तुम्हें भी आजाद देखना नहीं

चाहते हैं इसलिए हम दोनों गुलाम रहेंगे। इस बात को आनंद सर की कविता 'तुम भी गुलाम रहो' से समझा जा सकता है :

क्या तुम ब्राह्मणवाद से जीतने के बाद
मुझे अपनी दासता से मुक्त करोगे
मुझे नहीं लगता है कि तुम ऐसा करोगे
यदि नारी–पुरुष की समानता में तुम्हारा विश्वास है
तो मुझे अभी से
समानता के सारे अधिकार दे क्यों नहीं देते
नहीं, मैं तुम्हारी आजादी के लिए नहीं लडूँगी।
(मेरे हमराह, पेज 84)

जहाँ आनंद सर प्रेयसी पर कविता लिखते हैं, नारीवादी नारियों के विचार, द्वंद्व, सभ्यता और संस्कृति पर लिखते हैं, आंदोलित दलित स्त्री पर लिखते हैं, दलित स्त्रियों के पुरुष प्रधानता से मुक्ति के सवाल पर दलित पुरुष से सवाल पर लिखते हैं, वहीं आनंद सर ने अपनी पत्नी को पुरुष प्रधानता के विरुद्ध आवाज उठाने के लिए बहुत ही कलात्मक ढंग से स्त्रियों को प्रेरित करने के लिए लिखा है। अक्सर जब कोई पूँछता है कि किसके बच्चे हैं, तो माँ ही बेटे–बेटी से कहती है कि आपने पापा का नाम बता दो। इससे पुरुष प्रधान समाज का बोध होता है। समाज में स्त्री का कोई नाम नहीं है। सामान्य रूप से स्त्री का नाम गाँव, घर, मुहल्ले, समाज में कोई जानता ही नहीं है बल्कि स्त्री को नाम से पुकारना स्त्री और कुल–गोत्र की तौहीन समझा जाता है। आज जिन स्त्रियों का नाम सार्वजनिक हुआ है, वे या तो विख्यात हैं या कुख्यात। हालाँकि, इस परिवर्तन को सहर्ष स्वीकृति मिली है। कोई अदना सा व्यक्ति किसी बड़ी हवेली में जाकर बिना भय–बाधा के बोल देता है कि स्मृति ईरानी जी से मिलना है, ममता बैनर्जी जी से मिलना है, जय ललिता जी से मिलना है, सुषमा स्वराज जी से मिलना है, मायावती जी से मिलना है, फूलनदेवी जी से मिलना है, इत्यादि–इत्यादि लेकिन, अभी भी ऐसे नाम मात्र अँगुलियों पर ही हैं। ऐसी स्थिति अभी सार्वजनिक नहीं हुई है। गाँव और मुहल्ले में अमूमन सभी स्त्री–पुरुष सभी पुरुषों का नाम जानते हैं लेकिन स्त्रियों का नाम इक्के–दुक्के लोग ही इक्के–दुक्के स्त्रियों के नाम जानते हैं। ऐसी परिस्थिति में आनंद सर यदि अपनी पत्नी के माध्यम से सभी स्त्रियों को यह संदेश देते हैं कि स्त्रियों को अपने बच्चों से यह कहने की जरूरत है कि वे पापा का ही नाम नहीं मम्मी का भी नाम बताना सीखें। स्त्रियों का भी सामाजिक अस्तित्व है। उनकी कविता 'प्रिय! तुम कहाँ हो' पढ़ना चाहिए। अवलोकनार्थ कुछ अंश :

लोग पूँछते हैं
किसके बच्चे हैं
तुम कहती हो
बेटे! पापा का नाम बताओ,
मैं तुमसे पूँछता हूँ
प्रिय! तुम्हीं बताओ
आखिर तुम इनमें कहाँ हो?
(मेरे हमराह, पेज, 94)

आनंद सर ने अपनी बेटियों को संबोधित करते हुए नारी फितरत पर भी लिखा है। हालाँकि, वह नारी फितरत नहीं है, वह भी एक व्यवस्था के अंतर्गत संचालित हो रहा है क्योंकि आनंद सर ने अपनी कविता 'बेटियाँ फिर भी' में एक शब्द देते हैं 'व्याप्त'। वह 'व्याप्त' ही पुरुष प्रधान सत्ता है जिसे वे 'अदृश्य' की संज्ञा देते हैं और कहते हैं कि वही 'पुरुष नियंत्रण है' और 'व्याप्त' को नियंत्रण की अभिव्यक्ति कहते हैं। हम सोचते हैं कि हमने तो लड़कियों को यह नहीं सिखाया लेकिन लड़कियों को यही क्यों पसंद आया। हमने कभी नहीं कहा कि लड़कियाँ फ्रॉक पहनें, साड़ी पहने, बाल सँवारे, लाली–लिपिस्टिट्क–काजल लगाएँ लेकिन बेटियाँ युवा होते–होते पूरी स्त्री बन जाती हैं। सच, ऐसा होता है लेकिन यह सब अव्यक्त तरह से व्याप्त

संस्कृति उद्योग करता है। हमीं सिखाते हैं, हमीं रोकते हैं, हमी नियम बताते हैं। यह पूरे समाज में धड़ल्ले से निरंतर गति से होता रहता है। हम स्वयं इस उद्योग के कर्मचारी और भोक्ता दोनों हैं। बस, हमें पता नहीं चलता है। यही है आनंद सर का व्याप्त। उनकी कविता 'बेटियाँ फिर भी' देखिए :

मैं अपनी बेटियों को पतंग उड़ाने से नहीं रोकता
फिर भी,
मेरी बेटियाँ पतंग नहीं उड़ाती हैं
उनकी इच्छा दैवीय तो नहीं है
फिर भी,
किचेन की तरफ ही दौड़ती हैं
ऐसा व्याप्त है
मगर दिखता नहीं
पुरुष नियंता है
कोई व्यक्ति नहीं,
पुरुष नियंत्रण की अभिव्यक्ति की तरह है।
(मेरे हमराह, पेज 95)

आनंद सर ने प्रेयसी, नारीवादी स्त्री, सामान्य स्त्री, पत्नी, बेटी को संबोधित किया है, वहीं पुरुष के रूप में बेटे पर भी लिखा है। वर्तमान दौर में स्त्रियाँ हर तरफ असुरक्षित हैं। जोर, जबर्दस्ती, बलात्कार और हत्याओं की घटनाएँ बढ़ती जा रही हैं। एक अजीब सा माहौल तैयार हो रहा है। यहाँ तक कि फाँसी का डर भी युवकों को अत्याचार, बलात्कार और हत्या से नहीं रोक पा रहा है। हम लड़कियों को रात–बिरात और अकेले नहीं जाने देते हैं लेकिन लड़कों को नहीं रोकते हैं। आज हमें लड़कियों की ही तरह लड़कों को भी बिना मतलब कहीं वक्त–बेवक्त, रात–बिरात नहीं निकलने देना चाहिए। नियंत्रण उचित और पर्याप्त रूप से होना जरूरी है। नसीहतें जरूरी हैं। शिक्षा जरूरी है। नैतिकता जरूरी है। उपदेश और नितंत्रण जरूरी है। इस संबंध में आनंद सर की कविता 'रात अधिक हो गई है' उदाहरण योग्य है :

बेटा! रात अधिक हो गई है
कहाँ जा रहे हो
अरे पापा!
आप तो हमें लड़की समझ रखे हैं
जैसे कोई हमारी इज्जत लूट लेगा
नहीं! ऐसी बात नहीं है,
तुम्हारे रात में टहलने से
लड़कियाँ असुरक्षित रहती हैं।
(मेरे हमराह, पेज 137)

जब व्यवस्था बदलेगी तो नैतिकता भी बदलेगी। व्यक्तिवाद गिरती नैतिकता के लिए बेहद जिम्मेदार है। सामूहिकता में मनुष्य का नैतिक स्तर उच्च स्तर का हो जाएगा। ऐसी स्थिति में बेटी–बेटे की जिम्मेदारी न सिर्फ बाप की होगी बल्कि पूरा समाज उनके विकास के लिए जिम्मेदार होगा। जब हर रोजगार लायक स्त्री–पुरुष को काम दे दिया जाएगा तो कोई भी स्त्री किसी पुरुष की जिम्मेदारी बन कर घर में क्यों बैठेगी। जब किचेन, लांड्री, प्रेस, सफाई, बच्चे पालन से स्त्रियाँ मुक्त हो जाएँगी तो गृहणी बन कर बैठने–बैठाने का औचित्य कहाँ रह जाएगा। जब निजी गाड़ी, निजी घर, निजी जमीन, निजी जायजाद, निजी नौकर नहीं रहेगा तब व्यक्ति का स्वरूप और चरित्र भी बदल जाएगा। ऐसी स्थिति में स्त्रियों की पुरुष दासता से लेकर घरेलू उत्पीड़न और बलात्कार से लेकर दोयम दर्जे की जिंदगी और दोहरे शोषण से मुक्ति मिल जाएगी।

एल–1316, आवास विकास कॉलोनी,
बेनीगंज, फैजाबाद–224001 (उ.प्र.)
मोबा. 919451203713

''कलम के सिपाहियों की भीम वंदना'' बहुभाषी राष्ट्रीय कवि सम्मेलन सम्पन्न

मराठी साहित्य और सांस्कृतिक आंदोलन के प्रमुख मुखपत्र, मराठी साहित्य वार्ता वेब पोर्टल, यूट्यूब चैनल और फेसबुक पर बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर के महापरिनिर्वाण 6 दिसंबर 2020 के अवसर पर बहुभाषी राष्ट्रीय काव्य सम्मेलन ''कलम के सिपाहियों की भीमवंदना'' मराठी साहित्य वार्ता के यूट्यूब चैनल पर आयोजित किया गया। इस आयोजन की देशभर के लेखकों, साहित्यकारों ने प्रशंसा की है। इस कवि सम्मेलन में देश भर के लगभग 70 प्रसिद्ध कवियों ने भाग लिया।

कवि सम्मेलन का उद्घाटन 5 दिसंबर, 2020 को वरिष्ठ अम्बेडकरवादी साहित्यकार और विचारक ज. वि. पवार की अध्यक्षता में हुआ। इस अवसर पर पवार ने कहा कि मराठी साहित्य का कोई भी कवि ऐसा नहीं है जो बाबासाहेब अम्बेडकर पर कविता न लिखता हो। क्योंकि बाबासाहेब एक व्यक्ति नहीं बल्कि विचार हैं। और यह विचार निरंतर गतिमान है। इस अवसर पर वरिष्ठ साहित्यकार प्रा दामोदर मोरे मुंबई, वरिष्ठ साहित्यकार प्रा डॉ कालीचरण स्नेही उत्तर प्रदेश, वरिष्ठ साहित्यकार अरुण म्हात्रे मुंबई, वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. सुशीला टाकभौरे नागपुर आदि उपस्थित थे।

डॉ स्नेही ने कहा कि महाराष्ट्र में अंबेडकरवादी सांस्कृतिक आंदोलन मजबूत है। अम्बेडकरवादी आंदोलन के लिए यह बहुत महत्वपूर्ण मुद्दा है। महाराष्ट्र को अम्बेडकरवादी राजनीतिक आंदोलन का प्रतिनिधित्व उसी तरह करना चाहिए जिस तरह महाराष्ट्र देश के अम्बेडकरवादी सांस्कृतिक आंदोलन का प्रतिनिधित्व करता है। देश आपके पीछे मजबूती से खड़ा होगा।

डॉ. सुशीला टाकभौरे ने कहा कि वंचित बहुजन समूह के न्याय के अधिकार के लिए, डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर ने अपना जीवन न्यौछावर कर दिया। लेकिन अब वंचित बहुजन समूह के अधिकारों पर हथौड़ा चलाने के लिए एक साजिश रची जा रही है। ऐसे में देश के बुद्धिजीवियों को आगे आना चाहिए और वंचित जनता को जगाने की जिम्मेदारी स्वीकार करनी चाहिए। तभी इस महान संकट को टाला जा सकता है।

इस अवसर पर बोलते हुए, अरुण म्हात्रे ने कहा, "डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के जीवनकाल के दौरान, उच्च शिक्षित लोग जो उस समय बैरिस्टर थे, बाबासाहब को परेशान कर रहे थे। वे उनके विचारों और भूमिकाओं से परेशान थे। इसलिए बाबासाहेब को उस समय ऑफलाइन जाना पड़ा। परिस्थितियाँ जो भी हों, एक बात सुनिश्चित है, बाबासाहेब तब भी ऑनलाइन थे और इस प्रकार के लाइव शो के माध्यम से बाबासाहेब अभी भी ऑनलाइन हैं।

इस अवसर पर बोलते हुए दामोदर मोरे ने कहा कि मराठी साहित्य वार्ता मराठी और हिंदी साहित्य को जोड़ने वाला एक सेतु है। मराठी लेखक हिंदी लेखकों के साथ समन्वय के उद्देश्य से देश भर में कई प्रकार की भूमिकाओं में काम कर रहे हैं। यह साहित्य और संस्कृति के संरक्षण की बात है। स्वतंत्रता संग्राम में बाबासाहेब अंबेडकर के योगदान पर अधिक टिप्पणी की गई। मराठी साहित्य वार्ता के यूट्यूब चौनल पर प्रसारित होने वाले इस कार्यक्रम का संचालन मराठी साहित्य वार्ता के प्रमुख अमरदीप वानखड़े ने किया था। इस कार्यक्रम में देश भर से बड़ी संख्या में कवियों ने भाग लिया।

सैद्धांतिक रूप से, 6 दिसंबर, सुबह 10 बजे से, वरिष्ठ साहित्यकार दामोदर मोरे की अध्यक्षता में बहुभाषी राष्ट्रीय कविता सम्मेलन ''कलम के सिपाहियों की भीमवंदना'' की शुरुआत हुई। इस कवि सम्मेलन में कुसुम आलम (महाराष्ट्र), श्रीनिवासन (हैद्राबाद), विजयकुमार गवई (महाराष्ट्र), जमूना बीनी (अरूणाचल प्रदेश), भगवान निळे (महाराष्ट्र), अरूण कुमार (दिल्ली), सूनीता धर्मराव (महाराष्ट्र), तरसीम (पंजाब), डा. भास्कर पाटील (महाराष्ट्र), निखिल प्राजक्ते (गोवा), संदीप वाकोडे (महाराष्ट्र), किशनलाल वर्मा (राजस्थान), डब्ल्यू. कपूर (छत्तीसगड), अनील साबळे (महाराष्ट्र), अनील सूर्या (दिल्ली), नवनाथ रणखांबे (महाराष्ट्र), मच्छिंद्र चोरमारे (महाराष्ट्र), रतीलाल रोहित (गुजराथ), बिक्रम थापा (मेघालय), प्रकाश क्षिरसागर (गोवा), चित्रा क्षिरसागर (गोवा), अरविंद पासवान (बिहार), सुदाम सोनुले (महाराष्ट्र), हेमंत दलपती (ओरिसा), स्वाती उखले (मध्यप्रदेश), सुषमा पाखरे (महाराष्ट्र)

उषाकिरण अत्राम (महाराष्ट्र), सर्जनादित्य मनोहर (महाराष्ट्र), आनंदन रासू (पॉडिचेरी), प्रमोद वाळके (महाराष्ट्र), हरिकेश गौतम (उत्तरप्रदेश), शरद कोकास (छत्तीसगड), प्रकाश राठोड (महाराष्ट्र), अजय कांडर (महाराष्ट्र), डा. शशीधरण (केरळ), अर्जून गोलासंगे (कर्नाटक), डा. राधामणी (केरळ), पद्मप्रिया (पॉडिचेरी), नूतर नागनोल (पंजाब), डा. लीला मोरे (मध्यप्रदेश), डा. कार्तीक चौधरी (पश्चिम बंगाल), सुरेंद्र अम्बेडकर (पंजाब), सुरेश साबळे (महाराष्ट्र), डा. धीरजभाई वनकर (गुजरात), हरदान हर्ष (राजस्थान), अनिल दिनकर (उत्तरप्रदेश), दत्तप्रसाद जोग (गोवा), सूनीता बौद्ध (उत्तरप्रदेश), नीतीशा खलखो (झारखंड), डा. प्रेरणा उबाळे (महाराष्ट्र)

कल्याणी राजगे शिंदे (नायझेरिया), तारा परमार (मध्यप्रदेश), जयादेवी गायकवाड (कर्नाटक), खन्नाप्रसाद अमीन (गुजराथ), गुल अजमेरी (राजस्थान), डा. कर्मानंद आर्य (बिहार), अखिल नायक (ओरिसा), आनंद चक्रनारायण (महाराष्ट्र), शशीकुमार शर्मा (पश्चिम बंगाल), मिलिंद इंगळे (महाराष्ट्र), नीला वाघमारे (महाराष्ट्र), आदि राज्यों के कवियों ने भाग लिया।

प्रस्तुति : डॉ. दामोदर मोरे
मो. +91 98673 30533

Reg. No. MH-02- 0000380

मराठी साहित्य और सांस्कृतिक आंदोलन का प्रमुख डिजिटल मुखपत्र

मराठी साहित्य वार्ता

(वेब पोर्टल, यूट्यूब चैनल, फेसबुक पेज)

www.marathisahityawaarta.in

"कलम के सिपाहियों की भीमवंदना"

(बहुभाषी राष्ट्रीय कवि सम्मेलन)

सम्मानपत्र

आयु. डा. तारा परमार, मध्यप्रदेश

भारत रत्न डा. बाबासाहेब अम्बेडकर के ६४ वें महापरिनिर्वाण दिवस के अवसर पर, मराठी साहित्य और सांस्कृतिक आंदोलन के अग्रणी डिजिटल मुखपत्र, मराठी साहित्य वार्ता वेब पोर्टल, यूट्यूब चैनल और फेसबुक पेज आयोजित "कलम के सिपाहियों की भीमवंदना" इस बहुभाषी राष्ट्रीय कवि सम्मेलन में शामिल होने पर आपको यह प्रशस्ति पत्र देकर सम्मानित किया जाता है।

आपकी अगली साहित्यिक यात्रा के लिए मंगल कामनाएँ!

रविवार, ता. ६ दिसंबर २०२०

प्रा. दामोदर मोरे
कवि सम्मेलन के अध्यक्ष
वरिष्ठ साहित्यकार, मुंबई

अमरदीप वानखड़े
मुख्य संयोजक
मुख्य संपादक, मराठी साहित्य वार्ता

डॉ. तारा परमार
संपादक : ''आश्वस्त''
हिन्दी मासिक

पंजीयन संख्या
RNI No. MPHIN/2002/9510

डाक पंजीकृत क्रमांक मालवा डिविजन 204/2018-2020 उज्जैन (म.प्र.)

प्रतिष्ठा में ,

पत्र व्यवहार का पता :
20, बागपुरा, सांवेर रोड,
उज्जैन 456 010 (म.प्र.)

प्रकाशक, मुद्रक पिंकी सत्यप्रेमी ने भारती दलित साहित्य अकादमी की ओर से
मालवा ग्राफिक्स , 29, वररुचि मार्ग, गुरुद्वारे के सामने, फ्रीगंज, उज्जैन फोन : 0734-4000030 से मुदित एवं
20, बागपुरा, सांवेर रोड, उज्जैन 456 010 (म.प्र.) फोन : 0734-2518379 से प्रकाशित।

सम्पादक : डॉ. तारा परमार